हज़रत अक़्दस

की

पुरानी तहरीरें

(पुराने लेख)

संपादक

शेख़ याक़ूब अली तुराब

एडिटर अल-हकम क़ादियान

30 मई 1899 ई०

नाम पुस्तक : हज़रत अक़्दस की **पुरानी तहरीरें** (पुराने लेख)
Name of book : Hazrat Aqdas Ki **Purani Tahriren**
संपादक : शेख़ याक़ूब अली तुराब एडिटर अल-हकम क़ादियान
Editor : Shaikh Yaqoob Ali Turab
Editor al-hakam Qadian
अनुवादक : डॉ अन्सार अहमद, पी एच. डी., आनर्स इन अरबिक
Translator : Dr Ansar Ahmad, Ph. D, Hons in Arabic
टाईपिंग, सैटिंग : मलीहा सबाह
Typing Setting : Maliha Sabah
संस्करण तथा वर्ष : प्रथम संस्करण (हिन्दी) अगस्त 2018 ई०
Edition. Year : 1st Edition (Hindi) August 2018
संख्या, Quantity : 1000
प्रकाशक : नज़ारत नश्र-व-इशाअत,
क़ादियान, 143516
ज़िला-गुरदासपुर (पंजाब)
Publisher : Nazarat Nashr-o-Isha'at,
Qadian, 143516
Distt. Gurdaspur, (Punjab)
मुद्रक : फ़ज़्ले उमर प्रिंटिंग प्रेस,
क़ादियान, 143516
ज़िला-गुरदासपुर, (पंजाब)
Printed at : Fazl-e-Umar Printing Press,
Qadian, 143516
Distt. Gurdaspur (Punjab)

प्रकाशक की ओर से

हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब क़ादियानी मसीह मौऊद व महदी मा'हूद अलैहिस्सलाम द्वारा लिखित पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद श्री डॉ० अन्सार अहमद ने किया है और तत्पश्चात मुकर्रम शेख़ मुजाहिद अहमद शास्त्री (सदर रिव्यू कमेटी), मुकर्रम फ़रहत अहमद आचार्य (इंचार्ज हिन्दी डेस्क), मुकर्रम अली हसन एम. ए. और मुकर्रम नसीरुल हक़ आचार्य ने इसकी प्रूफ़ रीडिंग और रिव्यू आदि किया है। अल्लाह तआला इन सब को उत्तम प्रतिफल प्रदान करे।

इस पुस्तक को हज़रत ख़लीफ़तुल मसीह ख़ामिस अय्यदहुल्लाहु तआला बिनस्रिहिल अज़ीज़ (जमाअत अहमदिया के वर्तमान ख़लीफ़ा) की अनुमति से हिन्दी प्रथम संस्करण के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

विनीत
हाफ़िज़ मख़दूम शरीफ़
नाज़िर नश्र व इशाअत क़ादियान

पुरानी तहरीरें[1] (पुराने लेख)

आवागमन का खण्डन

तथा

वेद और क़ुर्आन की तुलना

आवागमन का खण्डन तथा वेद और क़ुर्आन की तुलना उस पांच सौ रुपए के पुरस्कार के विज्ञापन सहित जिसे पहले भी बावा साहिब से शास्त्रार्थ के समय सार्वजनिक तौर पर प्रचारित किया गया था, से सम्बद्ध लेख की घोषणा

न्यायप्रिय पाठकों की सेवा में स्पष्ट हो कि इस घोषणा को प्रसारित करने का कारण यह है कि कुछ दिन हुए कि पंडित खड़क सिंह साहिब सदस्य आर्य समाज अमृतसर, क़ादियान पधारे और बहस करने के अभिलाषी हुए। अतः उनकी इच्छानुसार वेद और क़ुर्आन की दृष्टि से आवागमन के बारे में बहस तय पाई। इसके अनुसार हमने एक लेख जो इसके पश्चात् लिखा जाएगा, आवागमन के खण्डन में इस अनिवार्यता के साथ तैयार किया कि उसके समस्त सबूत पवित्र क़ुर्आन से लिए गए और कोई भी ऐसा सबूत नहीं लिखा कि जिसका स्रोत और आशय पवित्र क़ुर्आन न हो और फिर लेख सार्वजनिक जन सभा में पंडित साहिब की सेवा में प्रस्तुत किया गया ताकि पंडित साहिब भी हमारे निर्धारित नियम के अनुसार आवागमन के समर्थन में वेद की श्रुतियां प्रस्तुत करें तथा इस प्रकार से आवागमन के विषय का निर्णय हो जाए तथा वेद और क़ुर्आन

1. हज़रत मसीह मौऊद अलैहिस्सलाम के ये लेख बराहीन अहमदिया से भी पहले के हैं जिनको पहली बार हज़रत ईर्फ़ानी कबीर शेख़ याक़ूब अली ने प्रकाशित किया था।

की वास्तविकता भी प्रकट हो जाए कि उन में से कौन विजयी तथा कौन पराजित है। इस पर पंडित साहिब ने सम्पूर्ण लेख सुनने के पश्चात् वेद के सबूत प्रस्तुत करने से सर्वथा असमर्थता प्रकट की, और ऋग्वेद से मात्र दो श्रुतियां प्रस्तुत कीं जिनमें उनके विचार से आवागमन की चर्चा थी तथा अपने सामर्थ्य से भी हमारे द्वारा प्रस्तुत सबूत का खण्डन न कर सके। हालांकि उन पर अनिवार्य था कि क़ुर्आन के सबूतों की तुलना में अपने वेद की भी कुछ फिलास्फ़ी हमें दिखाते और इस दावे को जो पंडित दयानन्द साहिब एक लम्बे समय से कर रहे हैं कि वेद समस्त विद्याओं एवं कलाओं का उद्गम है सिद्ध करते किन्तु खेद कि कुछ भी न बोल सके और मौन रह गए तथा असमर्थ और लाचार होकर अपने गांव की ओर चले गए। गांव में जाकर फिर एक लेख भेजा जिससे मालूम होता है कि उनमें अभी बहस करने की रुचि शेष है तथा आवागमन के विषय के बारे में किसी अख़बार के द्वारा वेद और क़ुर्आन की तुलना चाहते हैं। अत: अति उत्तम, हम पहले ही तैयार हैं। आवागमन के खण्डन का लेख जिसे हम सार्वजनिक जल्से में आदरणीय पंडित साहिब को सुना चुके हैं। वह सम्पूर्ण लेख पवित्र क़ुर्आन के तर्कों एवं सबूतों से लिखा गया है और जगह-जगह क़ुर्आन की आयतों का हवाला है। पंडित साहिब पर अनिवार्य है कि अपना लेख जो वेद के सबूतों से हमारे लेख की तुलना में तैयार किया हो सफीरे हिन्द या बिरादरे हिन्द या 'आर्य दर्पण' अखबार में छपवा दें। फिर बुद्धिमान लोग स्वयं ही देख लेंगे तथा उचित होगा कि इस वेद और क़ुर्आन के मुबाहसे की स्पष्ट श्रेष्ठता का निर्णय करने के लिए दो सभ्य एवं विद्वान व्यक्ति बतौर निर्णायक (मध्यस्थ) एक ईसाई धर्म से तथा एक ब्रह्म समाज से जो दोनों पक्षों के धर्म से संबंधित नहीं हैं, नियुक्त किए जाएं। अत: मेरे विचार में एक जनाब पादरी रजब

अली साहिब जो कुशाग्रबुद्धि अन्वेषक हैं और दूसरे जनाब पंडित शिव नारायण साहिब जो ब्रह्म समाज में विद्वान तथा सूक्ष्म दृष्टि रखते हैं इस विवादित बात का निर्णय करने में निर्णायक बनने के लिए बहुत ही उत्तम और उचित हैं। इस प्रकार से बहस करने में वास्तव में चार फायदे हैं-

प्रथम- आवागमन की बहस पूर्ण छानबीन के साथ निर्णय पा जाएगी।

द्वितीय- इस तुलना और मुकाबला से वेद और क़ुर्आन की भली भांति परीक्षा हो जाएगी तथा तुलना के पश्चात् न्यायप्रिय लोगों की दृष्टि में जो अन्तर प्रकट होगा वही अन्तर निर्णायक बात समझी जाएगी।

तृतीय- यह लाभ कि इस अनिवार्यता से अनभिज्ञ लोग वेद और क़ुर्आन की लिखित आस्थाओं से पूर्णतया अवगत हो जाएंगे।

चतुर्थ- यह फ़ायदा होगा कि आवागमन की यह बहस किसी एक व्यक्ति की राय नहीं समझी जाएगी बल्कि पुस्तक के रूप में संकलित होकर तथा असंतुलित ढंग से परिणाम ग्रहण करके सन्देहात्मक और त्रुटिपूर्ण (खोटी) नहीं रहेगी और इस बहस में यह कुछ आवश्यक नहीं कि अकेले पंडित खड़क सिंह साहिब ही उत्तर लिखने के लिए परिश्रम करें बल्कि मैं सार्वजनिक घोषणा करता हूं कि सभी सज्जनों में से कथित शीर्षक आवागमन का खण्डन जो आगे लिखा जाएगा, कोई विद्वान व्यक्ति उत्तर देने के प्रबंधक हों और यदि कोई भी व्यक्ति इतना अधिक ज़ोर देने के बाद भी इस तरफ़ ध्यान नहीं देंगे तथा आवागमन को सिद्ध करने के सबूत वेद के तथाकथित दर्शन से प्रस्तुत नहीं करेंगे या वेद द्वारा इन सबूतों से असमर्थ होने की स्थिति में अपनी बुद्धि से उत्तर नहीं देंगे तो उन पर आवागमन के असत्य होने की डिग्री हमेशा के लिए हो जाएगी तथा इसके अतिरिक्त वेद का दावा कि मानो वह समस्त विद्याओं एवं

कलाओं पर आधारित है केवल अप्रमाणित और असत्य ठहरेगा तथा अन्ततः ध्यान दिलाने के लिए यह भी निवेदन है कि मैंने जो इस से पूर्व फरवरी 1878 ई० में आवागमन के विषय के असत्य होने पर पांच सौ रुपए का इनामी विज्ञापन दिया था। वह विज्ञापन अब इस लेख से भी सर्वथा संबधित है। यदि पंडित खड़क सिंह साहिब या कोई अन्य सज्जन हमारे समस्त सबूतों का वेद में लिखित सबूतों द्वारा क्रमानुसार उत्तर देकर अपनी बुद्धि से खण्डन कर देंगे तो निस्सन्देह विज्ञापन की इनामी राशि के पात्र ठहरेंगे और विशेषतः खड़क सिंह साहिब की सेवा में जिनका यह दावा है कि हम पांच मिनट में उत्तर दे सकते हैं यह निवेदन है कि वह अब अपनी ज्ञान संबंधी योग्यता को मसीही धर्म तथा ब्रह्म समाज के प्रतिष्ठित विद्वानों के समक्ष प्रदर्शित करें तथा जो-जो विशेषताएं उनके श्रेष्ठ अस्तित्व में छिपी हुई हैं, प्रकट करें अन्यथा नादान जनसाधारण के सामने कुछ कहना केवल बकवास है इस से अधिक कुछ नहीं। अब मैं नीचे वादा की गई इबारत लिखता हूं:-

लेख- अवागमन का खण्डन तथा वेद और क़ुर्आन की तुलना जिसके उत्तर की मांग में आर्य समाज के विद्वानों अर्थात् पंडित खड़क सिंह साहिब, स्वामी पंडित दयानन्द साहिब, जनाब बावा नारायण सिंह साहिब, जनाब मुंशी जीवनदास साहिब, जनाब मुंशी कन्हैया लाल साहिब, जनाब मुंशी बख़्तावर सिंह साहिब एडीटर 'आर्य दर्पण'. जनाब बाबू शारदा प्रसाद साहिब, जनाब मुंशी शरमपत साहिब सेक्रेटरी आर्य समाज क़ादियान, जनाब मुंशी इन्दरमन साहिब सम्बोधित हैं पांच सौ रुपए इनाम के वादा सहित।

आर्य समाज का प्रथम सिद्धान्त जो आवागमन का आधार है यह है कि दुनिया का कोई स्रष्टा (ख़ालिक़) नहीं और सब रूहें (आत्माएं)

परमेश्वर की तरह अनादि हैं तथा अपने-अपने अस्तित्व की स्वयं ही परमेश्वर (स्रष्टा) हैं। मैं कहता हूँ कि यह सिद्धान्त ग़लत है और इस पर आवागमन की पटरी जमाना एक ख़राब विषय पर ख़राब बुनियाद रखना है। पवित्र क़ुर्आन कि जिस पर इस्लाम के सम्पूर्ण अनुसंधान की नींव है और जिसके तर्कों को प्रस्तुत करना वेद के तर्कों की मांग तथा वेद और क़ुर्आन में लिखित फ़िलास्फ़ी की परस्पर तुलना के उद्देश्य से हम वादा कर चुके हैं, स्रष्टा के सृष्टि करने की आवश्यकता को अटल तर्कों द्वारा सिद्ध करता है। अत: वे तर्क विवरण सहित निम्नलिखित हैं:-

प्रथम तर्क जो लिम्मी तर्क है अर्थात् तर्क कारण से कारक की ओर दलील गई है। देखो सूरह अर्रअद भाग-13

اَللّٰہُ خَالِقُ کُلِّ شَیۡءٍ وَّھُوَالۡوَاحِدُ الۡقَھَّارُ۔

(अर्रअद-17)

अर्थात् ख़ुदा प्रत्येक वस्तु का स्रष्टा है, क्योंकि वह अपने अस्तित्व और विशेषताओं में अकेला है और अकेला भी ऐसा कि क़हहार है अर्थात् समस्त वस्तुओं को अपने अधीन रखता है तथा उन पर प्रभुत्व रखने वाला है। यह तर्क प्रथम रूप के द्वारा जिसका परिणाम स्पष्ट है इस प्रकार स्थापित होता है कि उसका सुग़रा यह है कि ख़ुदा एक ओर क़हहार है तथा कुबरा यह कि प्रत्येक जो अकेला और क़हहार हो वह स्वयं के अतिरिक्त संसार की समस्त वस्तुओं का स्रष्टा हो। परिणाम यह हुआ कि ख़ुदा सम्पूर्ण सृष्टियों का स्रष्टा है। प्रथम रूप का सिद्ध करना अर्थात् सुग़रा इस प्रकार से है कि अकेला और क़हहार होना ख़ुदा तआला का सिद्धान्त दूसरे सदस्य के विषय अपितु समस्त संसार का सिद्धान्त है तथा द्वितीय रूप का सिद्ध करना अर्थात् कुब्रा का अर्थ इस प्रकार से है कि यदि ख़ुदा तआला अकेला और कहहार होते हुए अपने

अस्तित्व के अतिरिक्त अन्य का स्रष्टा न हो अपितु संसार की समस्त वस्तुओं का अस्तित्व अनादि काल से चला आता हो तो ऐसी अवस्था में वह अकेला और कह्हार भी नहीं हो सकता। अकेला इस कारण नहीं हो सकता कि एकत्व (वहदानियत) के अर्थ इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि अन्य की भागीदारी से पूर्णतया पवित्र हो और जब ख़ुदा तआला आत्माओं (रूहों) का स्रष्टा न हो तो इस से दो प्रकार का शिर्क (ख़ुदा का भागीदार बनाना) अनिवार्य हुआ। **प्रथम**- यह कि समस्त आत्माएं (रूहें) अनुत्पत्त होकर उस (ख़ुदा) के समान अनादि हो गईं। **द्वितीय-** यह है कि उनके लिए भी प्रतिपालक (परवरदिगार) के समान वास्तविक अस्तित्व मानना पड़े जो अन्य से लाभान्वित नहीं। अत: इसी का नाम अन्य के साथ भागीदारी है और स्रष्टा की अन्य के साथ भागीदार बुद्धि की दृष्टि से स्पष्ट रूप से असत्य है क्योंकि इससे स्रष्टा का भागीदार पैदा होता है और स्रष्टा का भागीदार निषेध एवं असंभव है। अत: जो बात असंभव को अनिवार्य करती हो वह भी असंभव है तथा कह्हार इस कारण नहीं हो सकता कि कह्हार होने की विशेषता के अर्थ ये हैं कि दूसरों को अपने अधीन कर लेना तथा उन पर हर प्रकार का आधिपत्य एवं अधिकार स्थापित कर लेना। अत: अनुत्पत्त और आत्माओं (रूहों) को ख़ुदा अपने अधीन नहीं कर सकता, क्योंकि जो वस्तुएं अपने अस्तित्व में अनादि और अनुत्पत्त हैं वे अनिवार्य तौर पर अपने अस्तित्व में वाजिबुल वुजूद (स्वयंभू) हैं, इसलिए कि अपने अस्तित्व में किसी अन्य का मुहताज नहीं (तात्पर्य परमेश्वर) और इसी का नाम वाजिब है जिसे फ़ारसी में ख़ुदा अर्थात् 'ख़ुद आइन्द:' कहते हैं (अर्थात् स्वयंभू)। अत: जब आत्माएं स्रष्टा के अस्तित्व के समान ख़ुदा और वाजिबुल वुजूद (स्वयंभू) ठहरीं तो उनका स्रष्टा के अधीन रहना बुद्धि के निकट असंभव

एवं निषेध हुआ, क्योंकि एक वाजिबुल वुजूद दूसरे वाजिबुल वुजूद के अधीन नहीं हो सकता। इससे पुनरावृत्ति और निरन्तरता अनिवार्य आती है, किन्तु वर्तमान बात तो दोनों प्रतिद्वंदी सदस्यों को मान्य है यह है कि समस्त आत्माएं (रूहें) ख़ुदा तआला के अधीन हैं कोई उसके आधिपत्य से बाहर नहीं। अत: सिद्ध हुआ कि वे सब नवीन और सृष्टि हैं उनमें से कोई ख़ुदा और वाजिबुलवुजूद (स्वयं भू) नहीं और यही अभीष्ट था।

द्वितीय तर्क जो इन्नी है अर्थात् वह तर्क जो कारक से कारण की ओर जाए। देखो सूरह अलफ़ुरक़ान आयत - 3

لَمْ يَكُنْ لَّهٗ شَرِيْكٌ فِي الْمُلْكِ وَخَلَقَ كُلَّ شَيْءٍ فَقَدَّرَهٗ تَقْدِيْرًا

अर्थात् उसकी बादशाहत में कोई उसका भागीदार नहीं। वह सब का स्रष्टा है और उसके स्रष्टा होने पर यह स्पष्ट तर्क है कि प्रत्येक वस्तु को एक निश्चित अनुमान पर पैदा किया है कि जिस से वह बाहर नहीं जा सकती अपितु उसी अनुमान में घिरी और सीमित है। इस का तर्कशास्त्रीय रूप इस प्रकार है कि प्रत्येक शरीर और आत्मा एक निर्धारित अनुमान में घिरी हुई और सीमित है और प्रत्येक वह चीज़ कि किसी निर्धारित अनुमान में घिरी हुई और सीमित हो उसका कोई परिवेष्टा[1] और परिसीमनकर्ता अवश्य होता है। निष्कर्ष यह हुआ कि प्रत्येक शरीर और आत्मा के लिए परिवेष्टा और परिसीमनकर्ता है। अब प्रथम दलील का सिद्ध करना इस प्रकार है अर्थात् वस्तुओं का सीमित होना इस प्रकार है कि समस्त शरीर और आत्माओं में जो-जो विशेषताएं पाई जाती हैं बुद्धि स्वीकार कर सकती है कि उन विशेषताओं से अधिक विशेषताएं उनमें पाई जातीं। उदाहरणत: मनुष्य की दो आंखें हैं और बुद्धि के अनुसार

1. हासिर - घेरे में करने वाला, मुहद्दिद-हदवन्दी करने वाला, परिसीमनकर्ता अर्थात् परिवेष्ट। (अनुवादक)

संभव था कि उसकी चार आंखें होतीं। दो मुंह की ओर, दो पीछे की ओर ताकि जैसा सामने की वस्तुओं को देखता है वैसा ही पीछे की वस्तुओं को भी देख लेता और कुछ सन्देह नहीं कि चार आंख का होना दो आंखों की तुलना में विशेषता में अधिक तथा लाभ में दोगुना है तथा मनुष्य के पंख नहीं, संभव था कि अन्य पक्षियों के समान उसके पंख भी होते और इसी प्रकार मानव आत्मा भी एक विशेष श्रेणी में सीमित है जैसा कि वह किसी शिक्षक से शिक्षा प्राप्त किए बिना अज्ञात बातों को ज्ञात नहीं कर सकती किसी बाह्य ज़बरदस्त से कि जैसे दीवानगी या नशे में चूर होने की हालत है उचित स्थिति में नहीं रह सकती बल्कि तुरंत उसकी शक्तियों एवं ताकतों में अवनति हो जाती है। इसी प्रकार वह स्वयं उनके भागों को ज्ञात नहीं कर सकती जैसा कि इसको अन्वेषक बू अली सीना ने 'नमत साबिअ इशारात' में विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है, हालांकि बुद्धि के अनुसार संभव था कि इन समस्त संकटों और दोषों से बचा हुआ होता। अत: जिन-जिन पदों और श्रेष्ठताओं को मनुष्य और उसकी आत्मा के लिए बुद्धि प्रस्तावित कर सकती है वह किस बात से उन पदों से वंचित है क्या यह प्रस्ताव किसी दूसरे प्रस्तावक से अथवा स्वयं अपनी इच्छा से। यदि कहो कि अपनी इच्छा से तो यह बिल्कुल विपरीत है क्योंकि कोई व्यक्ति अपने पक्ष में दोष उचित नहीं समझता, और यदि कहो कि प्रस्ताव किसी अन्य प्रस्तावक से, तो मुबारक हो कि आत्माओं (रूहों) और शरीरों के स्रष्टा का अस्तित्व सिद्ध हो गया और यही उद्देश्य था।

तृतीय तर्क जो क़ियासुलख़ुल्फ़ है और क़ियासुलख़ुल्फ़ उस क़ियास (अनुमान) का नाम है जिसमें वांछित को उसके विपरीत के खण्डन द्वारा सिद्ध किया जाता है और इस क़ियास को तर्कशास्त्र में ख़ुल्फ़ इस पहलू से कहते हैं कि ख़ुल्फ़ शब्दकोश में असत्य के अर्थ

में है तथा इसी प्रकार इस क़ियास में यदि मतलूब (वांछित) को कि जिसकी वास्तविकता का दावा है सच्चा न मान लिया जाए तो परिणाम ऐसा निकलेगा जो असत्य को अनिवार्य होगा और उपरोक्त क़ियास यह है, देखो सूरह 'अत्तूर' भाग-27 (आयत 36-38)

اَمْ خُلِقُوْا مِنْ غَيْرِ شَيْءٍ اَمْ هُمُ الْخٰلِقُوْنَ۔ اَمْ خَلَقُوا السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ بَلْ لَّا يُوْقِنُوْنَ۔ اَمْ عِنْدَهُمْ خَزَآئِنُ رَبِّكَ اَمْ هُمُ الْمُصَيْطِرُوْنَ۔

अर्थात् क्या ये लोग स्रष्टा के सृजन करने के इन्कारी हैं किसी स्रष्टा के उत्पन्न करने के बिना ही उत्पन्न हो गए अथवा अपने अस्तित्व को स्वयं ही पैदा कर लिया या स्वयं समस्त कारणों का कारण हैं जिन्होंने पृथ्वी और आकाश पैदा किया अथवा उन के पास ज्ञान और बुद्धि के असीमित भण्डार हैं जिन के द्वारा उन्होंने ज्ञात किया कि हम अनादि अस्तित्व हैं या वे स्वच्छन्द हैं और किसी की शक्ति के अधिकार में प्रकोपित नहीं हैं। ताकि यह धारणा हो कि जब उन पर कोई विजेता और महाप्रकोपी (कह्हार) ही नहीं तो वह उनका स्रष्टा कैसे हो। इस आयत में यह सूक्ष्म तर्क है कि आत्माओं के अनादि होने के सभी पांच भागों को इस तर्क पूर्ण शैली से वर्णन किया है कि प्रत्येक भाग के वर्णन द्वारा उस भाग का उसी समय खण्डन हो जाता है। इन सूक्ष्म संकेतों का विवरण यह है कि:-

प्रथम भाग- अर्थात् एक मादूम (नास्ति) का किसी कर्ता के कर्म के बिना स्वयं उत्पन्न हो जाना इस प्रकार असत्य है कि उस से एक को दूसरे पर बिना कारण के प्रधानता (तर्जीह) देना अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि नास्ति से आस्ति का लिबास धारण करने के लिए एक प्रभावशाली प्रधान होना चाहिए, जो अस्तित्व को अनस्तित्व पर प्रधानता दे। परन्तु यहां

कोई प्रभावशाली प्रधान मौजूद नहीं तथा प्रधान के अतिरिक्त के अभाव में स्वयं प्रधानता पैदा हो जाना असंभव है।

द्वितीय भाग- अर्थात् अपने अस्तित्व का स्वयं ही स्रष्टा होना इस प्रकार असत्य है कि इस से स्वयं पर वस्तु का पहले होना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि यदि यह स्वीकार किया कि प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व का अनिवार्य कारण उस वस्तु का स्वयं होना है। अतः आवश्यक तौर पर यह इकरार उस इक़रार के लिए अनिवार्य होगा कि वे समस्त वस्तुएं अपने अस्तित्व से पूर्व मौजूद थीं और अस्तित्व से पूर्व मौजूद होना असंभव है।

तृतीय भाग- अर्थात् प्रत्येक वस्तु का स्रष्टा के अस्तित्व की भांति समस्त कारणों का कारण तथा सम्पूर्ण संसार का रचयिता होना अनेकों ख़ुदाओं का होना अनिवार्य करता है तथा अनेकों ख़ुदा होना सर्वसम्मति से असंभव है तथा इस से पुनरावृत्ति और निरन्तरता अनिवार्य आती है और वह भी असंभव है।

चतुर्थ भाग- अर्थात् मनुष्य का असीमित ज्ञानों को अपनी परिधि में लेना इस तर्क द्वारा असंभव है कि मानव मनोवृति बाह्य पहचान के निर्धारण की दृष्टि से सीमित है और सीमित में असीमित नहीं समा सकता। इस से असीमित का सीमित करना अनिवार्य आता है।

पंचम भाग- स्वेच्छाचारी होना तथा किसी के आदेश के अधीन होना निषेध है क्योंकि मनुष्य की आत्मा अपने अस्तित्व की पूर्णता के लिए एक पूर्ण करने वाले की मुहताज है और मुहताज का स्वेच्छाचारी होना असंभव है। इस से दो परस्पर विपरीत बातों का एकत्र होना अनिवार्य आता है (जो ग़लत है)। अतः जबकि स्रष्टा के माध्यम के बिना संसार की समस्त विद्यमान वस्तुओं का मौजूद होना बहरहाल निषेध और असंभव हुआ, तो अवश्यक तौर पर यही स्वीकार करना पड़ा कि समस्त

विद्यमान सीमित वस्तुओं का एक स्त्रष्टा है जो ख़ुदा तआला है। इस क़ियास (अनुमान) के रूप जो सुग़रा और कुबरा के मुक़द्दमों (अर्थात् अनुमान का प्रथम विवाद तथा द्वितीय विवाद) के अनुक्रम (तरतीब) द्वारा तर्कशास्त्र के नियमानुसार जो अनुक्रम बनता है इस प्रकार है कि हम कहते हैं कि यह विवाद स्वयं में सत्य है कि कोई वस्तु परमेश्वर के माध्यम के बिना मौजूद नहीं हो सकती क्योंकि यदि वह सच्चा नहीं है तो उसका विपरीत सच्चा होगा कि प्रत्येक वस्तु परमेश्वर के माध्यम के बिना अस्तित्व में आ सकती है और यह दूसरा विवाद अभी हमारी उपरोक्त खोज में सिद्ध हो चुका कि समस्त संभावित चीज़ों का अस्तित्व परमेश्वर के माध्यम के बिना पांच असंभव बातों को अनिवार्य तौर पर सामने लाता है। अत: यदि यह विवाद सही नहीं है कि कोई चीज़ बिना वाजिबुल वजूद के मौजूद नहीं हो सकती तो यह विवाद उचित होगा कि समस्त वस्तुओं के अस्तित्व को पांच असंभव बातें अनिवार्य हैं, किन्तु वस्तुओं का अस्तित्व पांच असंभव बातों के होते हुए एक असंभव बात है। अत: परिणाम यह निकला कि स्वयंभू परमेश्वर के बिना किसी वस्तु का मौजूद होना असंभव बात है और यही अभीष्ट था।

चतुर्थ तर्क पवित्र क़ुर्आन में इक़्तिरानी क़ियास द्वारा स्थापित किया गया है। ज्ञात होना चाहिए कि क़ियास (अनुमान) सबूत के तीन प्रकारों में से प्रथम प्रकार है। और क़ियास इक़्तिरानी वह क़ियास है जिसमें मूल परिणाम या उसका विपरीत क्रियात्मक तौर पर वर्णित न हो बल्कि आन्तरिक तौर पर पाया जाए। तथा इक़्तिरानी इस दृष्टि से कहते हैं कि उसकी सीमाएं अर्थात् सबसे छोटी, मध्यम और सब से बड़ी पास-पास होती हैं तथा सामान्य तौर पर क़ियास (अनुमान) तर्क के समस्त प्रकारों में से उच्चतम एवं श्रेष्ठतम है क्योंकि इसमें कुल की स्थिति को देखकर

उसके भागों की स्थिति पर सबूत लिया जाता है जो पूर्णतया पूर्ण करने के कारण पूर्ण विश्वास का लाभ देता है। अत: वह क़ियास जिसकी इतनी प्रशंसा इस पवित्र आयत में दर्ज है और परमेश्वर के स्रष्टा होने के सबूत में गवाही दे रहा है। देखो सूरह अलहश्र भाग – 28

هُوَاللّٰهُ الۡخَالِقُ الۡبَارِئُ الۡمُصَوِّرُ لَهُ الۡاَسۡمَآءُ الۡحُسۡنٰى

(अलहश्र आयत- 25)

वह अल्लाह स्रष्टा है अर्थात् पैदा करने वाला है वह 'बारी' है अर्थात् आत्माओं और शरीरों को नास्ति से आस्ति में लाने वाला है, वह मुसव्विर है अर्थात् सामान्य आकृति तथा विशेष आकृति प्रदान करने वाला है, क्योंकि उसके लिए समस्त उत्तम नाम प्रमाणित हैं अर्थात् सम्पूर्ण विशेषताएं जो बुद्धि पूर्ण रूप से प्रस्तावित कर सकती है उसके अस्तित्व में एकत्र हैं। अत: नास्ति से आस्ति करने पर भी वह समर्थ है क्योंकि नास्ति से आस्ति में लाना क़ुदरती विशेषताओं में से एक उच्चतम विशेषता है और इस क़ियास (अनुमान) के अनुक्रम का प्रथम रूप इस प्रकार है कि हम कहते हैं कि उत्पन्न करना और मात्र अपनी क़ुदरत से अस्तित्व प्रदान करना एक विशेषता है और पूर्ण विशेषताएं ख़ुदा तआला को प्राप्त हैं। अत: परिणाम यह निकला कि नास्ति से आस्ति करने का विशेषता भी स्रष्टा को प्राप्त है। अत: प्रथम विवाद के अर्थ का प्रमाण अर्थात् इस बात का प्रमाण कि मात्र अपनी क़ुदरत से उत्पन्न करना एक विशेषता है इस प्रकार से होता है कि उसका विपरीत अर्थात् यह बात कि मात्र अपनी क़ुदरत से उत्पन्न करने में असमर्थ होना जब तक बाहर से कोई तत्त्व आकर सहयोगी या सहायक न हो एक भारी क्षति है क्योंकि यदि हम मान लें कि समस्त विद्यमान तत्त्वख़त्म हो गए तो साथ यह भी मानना पड़ता है कि अब परमेश्वर उत्पन्न करने से असमर्थ है। हालांकि

उस असीमित और सर्वशक्तिमान हस्ती पर ऐसा दोष लगाना मानो उसकी परमेश्वरता का इन्कार करना है।

इसके अतिरिक्त ख़ुदाई ज्ञान में यह मामला तार्किक तौर पर सिद्ध हो चुका है कि समस्त विशेषताओं से परिपूर्ण होना स्वयंभू अस्तित्व की परमेश्वरता के प्रमाण के लिए शर्त है। अर्थात् यह अनिवार्य है कि संभावित कल्पना की श्रेणियों से कौशल की कोई श्रेणी जो मस्तिष्क और विचार में आ सकती है उस पूर्ण हस्ती से पृथक न रहे। अत: निस्सन्देह बुद्धि इस बात को चाहती है कि परमेश्वर की परमेश्वरता की विशेषता यही है कि समस्त विद्यमान वस्तुओं का क्रम उसी की क़ुदरत तक समाप्त हो न यह कि अनादि विशेषता तथा वास्तविक हस्ती के बहुत से भागीदारों में विभाजित हो और इन समस्त प्रमाणों एवं तर्कों के अतिरिक्त प्रत्येक सद्बुद्धि रखने वाला व्यक्ति समझ सकता है कि उच्च कार्य निम्न कार्य की तुलना में अत्यधिक विशेषता को सिद्ध करता है। अत: जिस अवस्था में संसार के भागों का जोड़ना परमेश्वरीय कौशल में से है तो फिर संसार का उत्पन्न करना संसाधनों की आवश्यकता के बिना करोड़ों गुना अधिक क़ुदरत को सिद्ध करता है कितना उच्च कौशल होगा। अत: इसका प्रथम विवाद पूर्ण रूप से सिद्ध हुआ।

और द्वितीय विवाद का रूप अर्थात् इस विवाद का कि प्रत्येक कौशल स्रष्टा को प्राप्त है, इस प्रकार से है कि यदि स्रष्टा को कुछ कौशल प्राप्त नहीं तो इस अवस्था में प्रश्न यह होगा कि इन कौशलों से वंचित होना अपनी इच्छा से है अथवा किसी विवशता से है। यदि कहो कि अपनी इच्छा से है तो यह झूठ है क्योंकि कोई व्यक्ति अपनी इच्छा से अपने कौशल में दोष वैध नहीं रखता और जबकि यह विशेषता अनादि काल से परमेश्वर के अस्तित्व से बिल्कुल लुप्त है तो अपनी इच्छा से

कहां रही? और यदि कहो कि विवशता से तो किसी अन्य ज़बरदस्त का अस्तित्व मानना पड़ा कि जिसने परमेश्वर को विवश किया तथा परमेश्वरीय अधिकारों को जारी करने से उसे रोका अथवा यह मानना पड़ा कि वह ज़बरदस्त अस्तित्व उसका अपनी ही शक्तिहीनता और निर्बलता है कोई बाह्य ज़बरदस्ती करने वाला नहीं। बहरहाल वह विवश ठहरा। अत: इस अवस्था में वह परमेश्वरता के योग्य न रहा तो इस से अनिवार्य तौर पर सिद्ध हुआ कि परमेश्वर के विवशता के दोष से जो परमेश्वरता के असत्य होने को अनिवार्य है से पवित्र और पावन है तथा सृजन करने और नास्ति से उत्पन्न करने की पूर्ण विशेषता उसे प्राप्त है तथा यही उद्देश्य था।

पंचम तर्क- पवित्र क़ुर्आन में परमेश्वर के स्रष्टा होने पर 'क़ियास इस्तिसनाई' के तत्त्व के माध्यम से स्थापित किया गया है। 'क़ियास इस्तिसनाई' उस क़ियास (अनुमान) को कहते हैं जिसमें उसका वही परिणाम या उसका विपरीत क्रियात्मक रूप में मौजूद हो और दो मुकद्दमों से बना हो अर्थात् एक शर्त संबंधी दूसरा बनावट संबंधी। अत: जो आयत इस क़ियास से संबंधित है यह है। देखो सूरह -

يَخْلُقُكُمْ فِيْ بُطُوْنِ اُمَّهٰتِكُمْ خَلْقًا مِّنْۢ بَعْدِ خَلْقٍ فِيْ ظُلُمٰتٍ ثَلٰثٍؕ
ذٰلِكُمُ اللّٰهُ رَبُّكُمْ (अज़्ज़ुमर - 7)

अर्थात् वह तुम को तुम्हारी माताओं के पेटों से तीन अंधेरे पर्दों में पैदा करता है, इस पूर्ण बुद्धिमत्ता से कि एक पैदायश और प्रकार की तथा एक और प्रकार की बनाता है अर्थात् प्रत्येक अंग को विभिन्न रूप, विशेषताएं एवं पृथक-पृथक शक्तियां प्रदान करता है यहां तक कि एक निष्प्राण ढांचे में प्राण डाल देता है। न उसे काम करने से अंधकार रोकता और न भिन्न-भिन्न प्रकारों और गुणों के अंग बनाना उस पर

कठिन होता है और न इस उत्पत्ति के क्रम को हमेशा जारी रखने में उसे कुछ क्षति या हानि होती है ذٰلِكُمُ اللّٰهُ رَبُّكُمْ (यूनुस-4) वही जो हमेशा इस प्रकृति के क्रम को जारी और स्थापित रखता है वही तुम्हारा प्रतिपालक है अर्थात् इसी पूर्ण क़ुदरत से उसका पूर्ण प्रतिपालन जो नास्ति से आस्ति और आस्ति से पूर्ण अस्तित्व प्रदान करने को कहते हैं सिद्ध होता है। क्योंकि यदि वह पदार्थों का प्रतिपालक न होता और अपने अस्तित्व में पूर्ण प्रतिपालन की विशेषता न रखता तथा केवल एक बढ़ई या कारीगर के समान इधर-उधर से सामान लेकर गुज़ारा करता तो उसे पूर्ण क़ुदरत कदापि प्राप्त न होती तथा सदैव और हर समय सफल न हो सकता अपितु कभी न कभी अवश्य कमी आ जाती और उत्पन्न करने से असमर्थ रह जाता। आयत का सारांश यह है कि जिस व्यक्ति का कार्य पूर्ण प्रतिपालन द्वारा न हो अर्थात् स्वयं पैदा करने वाला न हो उसे पूर्ण क़ुदरत कभी प्राप्त नहीं हो सकती, परन्तु परमेश्वर को पूर्ण क़ुदरत प्राप्त है, क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रकार की पैदायश बनाना तथा एक के बाद दूसरे को बिना देर के प्रकटन में लाना तथा कार्य को हमेशा निरन्तर चलाना पूर्ण क़ुदरत की पूर्ण निशानी है। अत: इस से सिद्ध हुआ कि परमेश्वर को पूर्ण प्रतिपालन की विशेषता प्राप्त है और वास्तव में वह पदार्थों का प्रतिपालक है न केवल बढ़ई और राज मिस्त्री, अन्यथा संभव न था कि संसार का कारखाना हमेशा बिना रुकावट के चलता रहता अपितु संसार और उसके कारखाने का कभी का अन्त हो जाता, क्योंकि जिसका कार्य पूर्ण अधिकार से नहीं वह हमेशा और हर समय और हर मात्रा पर कदापि समर्थ नहीं हो सकता।

इस क़ियास का रूप जो आयत में लिखा है तर्क शास्त्र के नियमानुसार इस प्रकार है कि जिस व्यक्ति का कार्य किसी वस्तु के उत्पन्न करने में

पूर्ण क़ुदरत के तौर पर आवश्यक हो उसके लिए पूर्ण प्रतिपालन की विशेषता अर्थात् नास्ति से आस्ति करना भी आवश्यक है। परन्तु परमेश्वर का कर्म सृष्टियों के उत्पन्न करने में पूर्ण क़ुदरत के तौर पर आवश्यक है। अत: परिणाम यह हुआ कि उसके लिए पूर्ण प्रतिपालन की विशेषता भी आवश्यक है।

प्रथम विवाद का प्रमाण अर्थात् इस बात का कि जिस स्रष्टा के लिए पूर्ण क़ुदरत आवश्यक है उसके लिए पूर्ण प्रतिपालन की विशेषता भी आवश्यक है इस प्रकार से कि बुद्धि इस बात की आवश्यकता को अनिवार्य ठहराती है कि जब कोई ऐसा कारीगर कि जिसके संबंध में हम स्वीकार कर चुके हैं कि उसे अपनी किसी कारीगरी को बनाने में क्षति नहीं होती। किसी वस्तु का बनाना आरंभ करे तो कारीगरी को पूर्ण करने के समस्त संसाधन उसके पास मौजूद होने चाहिए और हर समय और हर मात्रा तक उन वस्तुओं को उपलब्ध करना जो सृजन की गई वस्तुओं के अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं उसके अधिकार में होना चाहिए और ऐसा पूर्ण अधिकार इस अवस्था के अतिरिक्त अन्य किसी अवस्था में पूर्ण नहीं कि स्रष्टा उस सृष्टि का उसके भाग पैदा करने पर समर्थ हो, क्योंकि हर समय हर मात्रा तक उन वस्तुओं का उपलब्ध हो जाना कि जिनका उपलब्ध करना स्रष्टा के पूर्ण अधिकार में नहीं बुद्धि के नज़दीक पीछे रहने की संभावना है और पीछे न रहने की संभावना पर कोई दर्शन शास्त्रीय तर्क स्थापित नहीं होता और यदि हो सकता है तो कोई सज्जन प्रस्तुत करे। कारण इसका स्पष्ट है कि इस इबारत का अर्थ कि अमुक कार्य का करना ज़ैद के पूर्ण अधिकार में नहीं इस इबारत के अर्थ के समान है कि संभव है कि किसी समय वह कार्य ज़ैद से न हो सके। अत: सिद्ध हुआ कि पूर्ण कारीगर का कार्य इसके अतिरिक्त कदापि नहीं चल

सकता कि जब तक उसकी क़ुदरत भी पूर्ण न हो। इसीलिए कारीगरों से कोई सृष्टि (मख़्लूक़) अपनी कारीगरी में पूर्ण कारीगर होने का दावा नहीं कर सकती बल्कि समस्त कारीगरों का नियम है कि जब कोई उनकी दुकान पर जाकर बार-बार उन्हें परेशान करे कि अमुक वस्तु मुझे अभी बना दो तो उसकी मांग से तंग आकर प्राय: कह उठते हैं कि "जनाब मैं कोई परमेश्वर नहीं हूं कि केवल आदेश से काम कर दूं, अमुक-अमुक वस्तु मिलेगा तो फिर बना दूंगा।" अत: सब जानते हैं कि पूर्ण कारीगर के लिए पूर्ण क़ुदरत और प्रतिपालन शर्त है। यह बात नहीं कि जब तक ज़ैद न मरे बकर के घर लड़का पैदा न हो या जब तक खालिद की मृत्यु न हो वलीद के ढांचे में जो अभी पेट में है प्राण न पड़ सके। अत: सुग़रा (प्रथम विवाद) आवश्यक तौर पर सिद्ध हुआ।

इसका कुबरा (द्वितीय विवाद) अर्थात् यह कि परमेश्वर सृष्टियों के पैदा करने में बतौर पूर्ण क़ुदरत आवश्यक है। प्रथम विवाद के प्रमाण से स्वयं सिद्ध होता है तथा स्पष्ट है कि यदि परमेश्वर में पूर्ण आवश्यक क़ुदरत न हो तो फिर उसकी क़ुदरत कुछ संयोगवश बातों की प्राप्ति पर निर्भर होगी। और जैसा कि हम वर्णन कर चुके हैं बुद्धि कह सकती है कि संयोगवश बातें परमेश्वर को यथासमय उपलब्ध न हो सकीं क्योंकि वे संयोग से हैं आवश्यक नहीं, हालांकि पेट के अन्दर के बच्चे के शरीर से शरीर के तैयार होने के लिए यथा समय संबंध ग्रहण करना आत्मा (रूह) का संबंध ग्रहण करना परस्पर अनिवार्य है। अत: सिद्ध हुआ कि परमेश्वर का कर्म बतौर पूर्ण क़ुदरत आवश्यक है तथा इस तर्क से परमेश्वर के लिए पूर्ण क़ुदरत की आवश्यकता अनिवार्य ठहरती है कि दर्शन शास्त्र के निर्धारित नियमानुसार हमें अधिकार है कि यह मान लें कि उदाहरणतया समस्त मौजूद रूहें (आत्माएं) अपने अनुकूल शरीरों से

सम्बद्ध रहीं। अत: हमने जब यह बात मान ली तो हमारा यह मानना उस दूसरे मानने को भी अनिवार्य होगा कि अब उस अवधि के पूर्ण होने तक उन शिशुओं में जो गर्भाशयों में तैयार हुए हैं कोई आत्मा प्रवेश नहीं करेगी , हालांकि शिशुओं का पेट में आत्मा से संबंध के बिना निलंबित पड़े रहना बुद्धि के अनुसार स्पष्ट रूप से ग़लत है और जो बात ग़लत को अनिवार्य करे वह स्वयं भी ग़लत है, अत: पहले प्रमाणों से यह परिणाम सिद्ध हुआ कि परमेश्वर के लिए पूर्ण प्रतिपालन की विशेषता आवश्यक है और यही उद्देश्य था।

षष्ठम तर्क- पवित्र क़ुर्आन में तत्त्व के माध्यम से क़ियास मुरक्कब (मिश्रित अनुमान) स्थापित किया गया है और क़ियास मुरक्कब की परिभाषा यह है कि ऐसे मुक़द्दमों से बने कि जिन से ऐसा परिणाम निकले कि यद्यपि वह परिणाम स्वयं उद्देश्य को सिद्ध न करता हो, किन्तु उसके द्वारा उद्देश्य इस प्रकार से सिद्ध हो कि उसी परिणाम को किसी अन्य मुक़द्दमे के साथ मिलाकर एक अन्य क़ियास बनाया जाए। फिर चाहे अभीष्ट (चाहा हुआ) परिणाम उसी द्वितीय क़ियास द्वारा निकल आए या इसी प्रकार से और क़ियास बना कर उद्देश्य प्राप्त हो। दोनों अवस्थाओं में इस क़ियास को मुरक्कब क़ियास कहते हैं तथा जो आयत इस क़ियास पर आधारित है यह है। देखो सूरह बक़रह-

اَللّٰہُ لَاۤ اِلٰہَ اِلَّا ھُوَ اَلۡحَیُّ الۡقَیُّوۡمُ لَا تَاۡخُذُہٗ سِنَۃٌ وَّلَا نَوۡمٌ ؕ
لَہٗ مَا فِی السَّمٰوٰتِ وَمَا فِی الۡاَرۡضِ ؕ (अलबक़रह-256)

अर्थात् परमेश्वर अपने अस्तित्व में सब सृष्टियों (मख़्लूक़ात) के उपास्य होने का हमेशा अधिकार रखता है जिसमें उसका कोई भागीदार नहीं। इस स्पष्ट सबूत से वह जीवित, अजर-अमर है और समस्त वस्तुओं

को वही स्थापित करने वाला है अर्थात् प्रत्येक वस्तु की स्थापना और अनश्वरता उसी के अनश्वर और स्थापित होने से है और वही प्रत्येक वस्तु को प्रतिपल थामे हुए है। न उस पर ऊंघ व्याप्त होती है, न नींद उसे पकड़ती है अर्थात् सृष्टि की सुरक्षा से कभी असावधान नहीं होता। फिर जबकि प्रत्येक वस्तु की स्थापना उसी से है। तो सिद्ध है कि सम्पूर्ण आकाश की सृष्टियों तथा पृथ्वी की प्रत्येक सृष्टि का वही स्रष्टा (पैदा करने वाला) है और वही मालिक (स्वामी)। इस क़ियास का रूप जो कथित आयत में है तर्कशास्त्र के नियमानुसार इस प्रकार है। (क़ियास मुरक्कब का प्रथम भाग) (प्रथम विवाद=सुग़रा) परमेश्वर को किसी की भागीदारी के बिना समस्त सृष्टियों के उपास्य होने का अजर-अमर अधिकार प्राप्त है (द्वितीय विवाद=क़ुबरा) और जिसे समस्त सृष्टियों के उपास्य होने का अजर-अमर अधिकार हो वह जीवित, अजर-अमर तथा समस्त वस्तुओं का स्थापित करने वाला होता है। (परिणाम)- परमेश्वर अजर-अमर, जीवित तथा समस्त वस्तुओं को स्थापित रखने वाला है। (क़ियास मुरक्कब का द्वितीय भाग) कि जिसमें प्रथम क़ियास का परिणाम क़ियास का प्रथम विवाद बनाया गया है। (सुग़रा-प्रथम विवाद)- परमेश्वर अजर-अमर और समस्त वस्तुओं को स्थापित रखने वाला है) (क़ुबरा-द्वितीय विवाद) और जो जीवित, अजर-अमर तथा समस्त वस्तुओं का स्थापित रखने वाला हो वह समस्त वस्तुओं का स्रष्टा होता है (परिणाम) (ख़ुदा समस्त वस्तुओं का स्रष्टा है) क़ियास मुरक्कब के प्रथम भाग का प्रथम विवाद-अर्थात् यह विवाद कि ख़ुदा का किसी की भागीदारी के बिना समस्त सृष्टियों के उपास्य होने का अजर-अमर अधिकार दूसरे सदस्य (प्रतिद्वंदी) के इक़रार द्वारा सिद्ध है। अत: प्रमाण को स्थापित करने की आवश्यकता नहीं तथा क़ियास मुरक्कब के द्वितीय भाग के द्वितीय विवाद

का अर्थात् यह विवाद कि जिसे समस्त वस्तुओं के उपास्य होने का अजर-अमर अधिकार हो वह जीवित, अजर-अमर तथा समस्त वस्तुओं का स्थापित रखने वाला होता है। इस प्रकार से सिद्ध है कि यदि परमेश्वर अजर-अमर और जीवित नहीं है तो यह मानना पड़ा कि किसी समय पैदा हो या भविष्य में किसी समय शेष नहीं रहेगा। दोनों अवस्थाओं में उसका अजर-अमर उपास्य होना मिथ्या होता है क्योंकि जब उसका अस्तित्व ही न रहा तो फिर उसकी उपासना नहीं हो सकती क्योंकि दुर्लभ की उपासना उचित नहीं है और जब वह दुर्लभ होने के कारण अजर-अमर उपास्य न रहा तो यह विवाद असत्य हुआ कि परमेश्वर को उपास्य होने का अजर-अमर अधिकार है, हालांकि अभी वर्णन किया जा चुका है कि यह विवाद सत्य है। अत: स्वीकार करना पड़ा कि जिसको समस्त वस्तुओं के उपास्य होने का अजर-अमर अधिकार हो वह जीवित तथा अजर-अमर होता है।

इसी प्रकार यदि परमेश्वर समस्त वस्तुओं को स्थापित रखने वाला नहीं है अर्थात् दूसरों का जीवन और अनश्वरता उसके जीवन और अनश्वरता पर निर्भर नहीं तो इस अवस्था में उसका अस्तित्व सृष्टियों की अनश्वरता के लिए कुछ शर्त न होगा बल्कि उसका प्रभाव बलात् प्रभाव डालने के तौर पर होगा न कि वस्तुओं के रक्षक के वास्तविक कारण के तौर पर, क्योंकि बलात् प्रभाव डालना उसे कहते हैं कि जिसका अस्तित्व और अनश्वरता उसके प्रभावित की अनश्वरता के लिए शर्त न हो। जैसे ज़ैद में उदाहरणतया एक पत्थर चलाया और पत्थर चलाते ही उसी समय मर गया तो निस्सन्देह उस पत्थर को जो अभी उसके हाथ से छूटा है ज़ैद की मृत्यु के पश्चात भी गति रहेगी। अत: इसी प्रकार आर्य समाज वालों के कथनानुसार परमेश्वर को मात्र बलात् प्रभाव डालने वाला ठहराया

जाए तो इससे नऊज़ुबिल्लाह यह अनिवार्य आता है कि यदि परमेश्वर की मृत्यु भी मान लें तो भी आत्माओं और कणों की कुछ भी क्षति न हो क्योंकि पंडित दयानन्द साहिब के कथनानुसार कि जिसे उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखकर एकेश्वरवाद (तौहीद) का सत्यानाश किया है तथा पंडित खड़क सिंह साहिब के कथनानुसार जिन्होंने बिना सोचे-समझे पंडित दयानन्द साहिब का अनुसरण किया है। वेद में यह लिखा है कि समस्त आत्माएं अपनी अनश्वरता और जीवन में परमेश्वर से बिल्कुल निःस्पृह हैं और जिस प्रकार बढ़ई का चौकी से और कुम्हार का घड़े से संबंध होता है वही परमेश्वर का सृष्टियों से है अर्थात् मात्र जोड़ने-जाड़ने से टुण्डा परमेश्वर ग्रेका चलाता है तथा वस्तुओं का स्थापित करने वाला नहीं है। परन्तु प्रत्येक बुद्धिमान जानता है कि ऐसा मानने से यह अनिवार्य आता है कि परमेश्वर का अस्तित्व भी कुम्हारों और बढ़इयों के अस्तित्व के समान वस्तुओं की अनश्वरता के लिए कुछ शर्त न हो बल्कि जिस प्रकार कुम्हारों और बढ़इयों की मृत्यु के पश्चात घड़े और चौकियां उसी प्रकार से बने रहते हैं इसी प्रकार परमेश्वर की मृत्यु होने के पश्चात् भी मौजूद वस्तुओं में कुछ भी विघ्न पैदा न हो सके। अतः सिद्ध हुआ कि पंडित साहिब का यह विचार कि परमेश्वर के स्रष्टा होने में कुम्हार और बढ़ई से समानता है दो विपरीतार्थक बातों का एक स्थान पर इकट्ठा करना है। काश यदि वह परमेश्वर को वस्तुओं का स्थापित करने वाला मानते और बढ़इयों जैसा न मानते तो उन्हें यह तो न कहना पड़ता कि परमेश्वर की मृत्यु मानने से आत्माओं की कोई क्षति नहीं, परन्तु कदाचित् वेद में भी लिखा होगा अन्यथा मैं क्योंकर कहूं कि पंडित साहिब को प्रतिपालक के स्थापित होने और स्थापित करने पर जो नितान्त व्यापक बातों में से है कुछ सन्देह है। यदि पंडित साहिब परमेश्वर को समस्त वस्तुओं का

स्थापित रखने वाला मानते हैं तो फिर उसकी कुम्हारों और राजमिस्त्रियों से तुलना करना किस प्रकार की विद्या है और इस पर वेद में क्या तर्क लिखा है। देखिए पवित्र क़ुर्आन में प्रतिपालक (परमेश्वर) की स्थापित रखने की विशेषता को कई स्थानों में सिद्ध किया है जैसा कि पुनः इस दूसरी आयत में भी कहा है। सूरह अन्नूर

اَللّٰهُ نُوْرُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ

(अन्नूर-36)

अर्थात् परमेश्वर आकाश और पृथ्वी का प्रकाश है, इसी से निचले तथा ऊपरी वर्ग में जीवन और अनश्वरता का प्रकाश है। अतः हमारे इस अन्वेषण से क़ियास मुरक्कब भाग प्रथम सिद्ध हुआ और क़ियास मुरक्कब के द्वितीय भाग का प्रथम विवाद वही है जो क़ियास मुरक्कब के द्वितीय भाग का परिणाम है तथा क़ियास मुरक्कब का प्रथम भाग अभी सिद्ध हो चुका है, अतः परिणाम सिद्ध हो गया।

और द्वितीय भाग का द्वितीय विवाद जो जीवित, अजर-अमर और समस्त वस्तुओं का स्थापित करने वाला हो वह स्रष्टा होता है, इस प्रकार से सिद्ध है कि क़य्यूम (स्वयं स्थापित रहने वाला और दूसरों को स्थापित रखने वाला) उसे कहते हैं कि जिसकी अनश्वरता और जीवन दूसरी वस्तुओं की अनश्वरता और जीवन तथा उनकी कुल आवश्यकताओं की प्राप्ति की शर्त हो और शर्त के अर्थ हैं कि यदि उनका दुर्लभ होना मान लिया तो साथ ही जिसके लिए शर्त की गई का दुर्लभ होना मानना पड़े, जैसे कहें कि यदि परमेश्वर का अस्तित्व न हो तो किसी वस्तु का अस्तित्व न हो। अतः यह कथन कि यदि परमेश्वर का अस्तित्व न हो तो किसी वस्तु का अस्तित्व न हो बिल्कुल उस कथन के समान है कि परमेश्वर का अस्तित्व न होत तो किसी वस्तु का अस्तित्व न होता। अतः

इससे सिद्ध हुआ कि परमेश्वर का अस्तित्व दूसरी वस्तुओं के अस्तित्व का कारण है और परमेश्वर की सृजनात्मक विशेषता के अतिरिक्त इसके अन्य कोई अर्थ नहीं कि परमेश्वर के अस्तित्व के लिए कारण हो। अतः सिद्ध हो गया कि परमेश्वर स्रष्टा है और यही उद्देश्य था।[1]

लेखकः

मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद

रईस क़ादियान

1.पुरानी तहरीरें, रूहानी खज़ाइन जिल्द-2 पृष्ठ 3 से 19

इल्हाम के विषय की बहस पर पत्राचार

इल्हाम एक परोक्ष (ग़ैबी, अदृष्ट) इल्क़ा है जिसकी प्राप्ति किसी प्रकार की सोच, दुविधा, चिन्ता तथा दूरदर्शिता पर निर्भर नहीं होती तथा एक स्पष्ट और व्यक्त अहसास से कि जैसे श्रोता को वार्तालाप करने वाले से या पीटे गए व्यक्ति को पीटने वाले से या स्पर्श किए गए व्यक्ति को स्पर्श कर्ता से हो महसूस होता है और उस से हृदय को सोच-विचार की गतियों के समान कोई रूहानी कष्ट नहीं पहुंचता बल्कि जैसे प्रेमी अपने प्रियतम के दर्शन से बिना किसी कष्ट के चित्त की प्रसन्नता एवं हर्षोल्लास पाता है वैसे ही रूह का इल्हाम से एक अजर-अमर संबंध है कि जिससे रूह (आत्मा) एक आनंद प्राप्त करती है। अत:- यह ख़ुदा की तरफ़ से एक आनन्ददायक ज्ञान देना है कि जिसे दिल में फूंकना और वह्यी भी कहते हैं।

इल्हाम की आवश्यकता पर लिम्मी तर्क नं. 1

हमारे पास बचाने वाला ऐसा कोई क़ानून नहीं है कि जिसके द्वारा हम अनिवार्य तौर पर ग़लती से बच सकें। यही कारण है कि जिन विद्वानों ने तर्कशास्त्र के नियम बनाए और मुनाज़र: (शास्त्रर्थ) के सिद्धान्तों का आविष्कार किया और दर्शनशास्त्र के तर्कों का निर्माण किया वे भी गलतियों में डूबते रहे और सैकड़ों प्रकार के गलत विचार, झूठा दर्शनशास्त्र तथा व्यर्थ बातें अपनी मूर्खता की यादगार में छोड़ गए। अत: इस से यह प्रमाण मिलता है कि अपने ही अनुसंधानों से समस्त सच्ची बातों तथा सही आस्थाओं (अक़ीदों) पर पहुंच जाना और कहीं ग़लती न करना एक असंभव बात है, क्योंकि आज तक हमने कोई व्यक्ति ऐसा नहीं देखा और न सुना और न किसी ऐतिहासिक पुस्तक में लिखा हुआ

पाया कि जो अपने सम्पूर्ण सोच-विचार में भूल और ग़लती से पवित्र हो। अत: 'इस्तिक़राई अनुमान' के द्वारा यह सही और सच्चा परिणाम निकलता है कि ऐसे लोगों का अस्तित्व जिन्होंने केवल प्रकृति के नियम में सोच-विचार करके अपने कांशन्स के भण्डार को विश्व-घटनाओं से अनुकूलता देकर अपने अनुसंधानों को ऐसी ठोस और अटल सच्चाई पर पहुंचा दिया हो कि जिसमें ग़लती का निकलना असंभव हो, स्वाभाविक तौर पर असंभव है।

तत्पश्चात् जिस बात में आप बहस कर सकते हैं और जिस बात का आपको अधिकार प्राप्त है वह यह है कि आप हमारे इस इस्तिक़रा के विपरीत कोई उदाहरण देकर हमारे इस इस्तिक़रा का खण्डन कर दें अर्थात् बहस की सीधी पद्धति के अनुसार आप का उत्तर केवल इस बात पर निर्भर है कि यदि आप की दृष्टि में हमारा इस्तिक़रा ग़लत है तो आप हमारे इस इस्तिक़रा के खण्डन के लिए मेधावी, प्रतिभाशाली विचारकों में से कोई ऐसा कामिल इन्सान प्रस्तुत करें जिसकी समस्त रायों, फैसलों एवं निर्णयों में कोई दोष (कमी) निकालना कदापि न हो तथा उसकी जीभ और क़लम भूल और ग़लती से सर्वथा निर्दोष हो, ताकि हम भी तो देखें कि वह वास्तव में ऐसा ही निर्दोष है अथवा उसका क्या हाल है। यदि निर्दोष निकलेगा तो निस्सन्देह आप सच्चे और हम झूठे अन्यथा बिल्कुल स्पष्ट है कि जिस हालत में न स्वयं मनुष्य अपने ज्ञान और जानकारी से ग़लती से बच सके और न ख़ुदा (जो दयालु, कृपालु तथा प्रत्येक भूल-चूक से मुक्त और हर बात के मर्म को जानता है) अपने सच्चे इल्हाम के द्वारा अपने बन्दों की सहायता करे तो फिर हम असहाय बन्दे क्योंकर अंधेरों, मूर्खता और ग़लती से बाहर आएं तथा क्योंकर सन्देह-शंकाओं की विपत्तियों से मुक्ति पाएं। इसलिए मैं दृढ़ राय से यह बात व्यक्त करता हूं

कि उस सर्वशक्तिमान की दूरदर्शिता, दया तथा भक्तों पर कृपा दृष्टि यही चाहती है कि कभी-कभी जब हित देखे ऐसे लोगों को पैदा करता रहे जो सच्ची आस्थाओं के जानने तथा उचित आचरण के मालूम करने में ख़ुदा की तरफ़ से इल्हाम (ईशवाणी) पाएं और शिक्षा को समझने की ख़ुदादाद (ईश्वर प्रदत्त) महारत रखें ताकि मनुष्य जो सच्चे मार्गदर्शन के लिए पैदा किए गए हैं अपने वांछित सौभाग्य से वंचित न रहें।

लेखक-आप का मित्र- ग़ुलाम अहमद उफ़ियाअन्हो

21 मई 1879 ई०

आदरणीय जनाब मिर्ज़ा साहिब

आप का पत्र लेख सहित मिला। अपने इल्हाम की परिभाषा एवं उसकी आवश्यकता के बारे में जो कुछ लिखा है अफ़सोस है कि मैं उस से सहमत नहीं हो सकता हूं। मेरे सहमत न होने के जो-जो कारण हैं वे निम्नलिखित है:-

प्रथम- आप के उस तर्क में (जिसको आप लिम्मी कहते हैं) इस विचार के अतिरिक्त कि वह इल्हाम के लिए जिसको आप मालूल (कर्म=परिणाम) समझते हैं कारण हो सकता है या नहीं एक ऐसी स्पष्ट ग़लती पाई जाती है कि जो घटनाओं के विरूद्ध है। उदाहरणतया आप लिखते हैं कि "हमारे पास ऐसा बचाने वाला कानून नहीं है जिसके द्वारा हम अनिवार्य तौर पर ग़लती से बच सकें और यही कारण है कि जिन दार्शनिकों के तर्क शास्त्र के नियम बनाए और मुनाज़र: शास्त्रार्थ की पद्धतियां आविष्कृत कीं तथा दर्शनशास्त्र के तर्क बनाए वे भी ग़लतियों में डूबते रहे तथा सैकड़ों प्रकार के ग़लत विचार, झूठा दर्शन तथा निरर्थक बातें अपनी मूर्खता की यादगार छोड़ गए।" इससे क्या आप का यह

मतलब है कि मनुष्य ने अपनी खोजों में आज से हज़ारों वर्ष पहले तक जो कुछ सर खपाया है और हाथ-पैर मारे हैं उसमें झूठे विचार, झूठा दर्शन तथा निरर्थक बातों के अतिरिक्त कोई सही विचार तथा सच्ची बात नहीं छोड़ गया है? या अब जो अन्वेषक नेचर के अनुसंधानों में व्यस्त हैं वे केवल 'मूर्खता' के भण्डार में वृद्धि करते हैं और सच्ची बात पर पहुंचने से सर्वथा असमर्थ हैं? यदि आप इन प्रश्नों का उत्तर 'नहीं' में न दें तो बिल्कुल स्पष्ट है कि आप सैकड़ों विद्याओं और उनसे संबंधित हज़ारों बातों की सच्चाई और सही जानकारियों से जिन से दुनिया की प्रत्येक जाति कमोबेश लाभान्वित हो रही है बिल्कुल इन्कार करते हैं, किन्तु मैं विश्वास करता हूं कि शायद आप का यह मतलब न होगा तथा इस बयान से संभवतः आप का यह अभिप्राय होगा कि मनुष्य से अपने अनुसंधानों और जानकारियों में भूल-चूक का होना संभव है परन्तु यह नहीं कि नेचर (प्रकृति) ने मनुष्य को वास्तव में ऐसा बनाया कि जिस से वह कोई जानकारी सही तौर पर प्राप्त ही नहीं कर सकता है, क्योंकि ऐसे लोग आप ने स्वयं देखे और सुने होंगे तथा इतिहास में ऐसे लोगों की चर्चा का अध्ययन किया होगा कि जो "अपनी सम्पूर्ण दृष्टि और विचार में" यद्यपि आप के नज़दीक भूल-चूक से निर्दोष न हों, परन्तु बहुत सी बातों में उनकी जानकारियां बिल्कुल सच्ची और सही सिद्ध हुई हैं तथा सैकड़ों बातों के अनुसंधान जो भूतकाल और वर्तमान युग में घटित हुई हैं उनमें ग़लती का निकलना बिल्कुल असंभव है और इस बयान की पुष्टि आप भौतिकी, ज्यॉमेट्री तथा नीतिशास्त्र इत्यादि से संबंधित सैकड़ों जानकारियों में भली भांति कर सकते हैं।

कुल जानकारियां जो मनुष्य आज तक प्राप्त कर चुका है तथा भविष्य में प्राप्त करेगा उसकी प्राप्ति का कुल सामान प्रत्येक मनुष्य में

नेचर ने उपलब्ध कर दिया है। अब उस सामान को मनुष्य व्यक्तिगत तथा सामूहिक तौर पर अपनी जितनी मुहब्बत और कठिन परिश्रम से दिन-प्रतिदिन अधिक से अधिक उत्तम और शक्तिशाली बनाने के साथ उन्नत रूप में लाता है और जितना उसके इस्तेमाल की समझ पैदा करता जाता है उतना ही वह नेचर के अनुसंधानों में अधिक से अधिक दुरुस्ती के साथ अपनी जानकारियों की प्राप्ति में सफल होता जाता है।

इस संक्षिप्त वर्णन से मैं विश्वास करता हूं कि आप इस बात को स्वीकार करने से इन्कार न करेंगे कि मनुष्य से अपने अनुसंधानों में यद्यपि ग़लती करना संभावनाओं में से है परन्तु यह नहीं कि उसकी हर जानकारी में ग़लती मौजूद है बल्कि उसकी बहुत सी जानकारियां सही हैं तथा स्पष्ट है कि उसकी जिन जानकारियों में ग़लती मौजूद नहीं हैं वह जिस नियम और पद्धति के अनुसार प्रकटन में आई है वह भी ग़लती से मुक्त था, क्योंकि ग़लत नियम का पालन करने से कभी कोई सही नतीजा नहीं निकलता है। अत: उसकी जो जानकारी सही है उसमें से सच्चाई की प्राप्ति के लिए नेचर ने उसे जो सामान प्रदान किया था उसका सही और उचित इस्तेमाल प्रकट हुआ। परन्तु जहां उसने अपनी जानकारियों में ग़लती की है, वहां उसकी उचित देख-रेख नहीं हुई। जैसे एक व्यक्ति जिसके पास दूरबीन मौजूद है और वह उसकी नली भी खोलना जानता है परन्तु सही फोकस न कर सकने के कारण जिस प्रकार सामने की वस्तु को या तो देखने से वंचित रहता है या बशर्त देखने के साफ और मूल रूप में नहीं देख सकता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति अपने अनुसंधानों में उपरोक्त कथित नेचरी सामान की दूरबीन खोलते समय उचित डिग्री के

फोकस में लाने से रह जाता है तो वह या तो वास्तविकता की तस्वीर देखने से ही वंचित हो जाता है या वह तस्वीर, जैसी है वैसी नहीं देख सकता है।★ परन्तु जो व्यक्ति इस व्यक्ति के विपरीत सही फोकस पैदा करने योग्य होता है वह पहले व्यक्ति की ग़लती को मालूम कर लेता है और सही बात तक पहुंच जाता है।

अतः इस वर्णन से (कि जो अत्यन्त सीधा और स्पष्ट है) यह भली भांति सिद्ध है कि प्रथम तो मनुष्य कुछ परिस्थितियों में अपने नेचरी सामान के उचित इस्तेमाल के साथ पहले ही मामले की सच्चाई को ज्ञात कर लेता है। द्वितीय-उचित इस्तेमाल में न लाने की शर्त पर या न ला सकने के यदि ग़लती करता है तो कोई दूसरा जिसे उसके उचित इस्तेमाल का अवसर मिल जाता है वह उस ग़लती को दूर कर देता है। अतः मनुष्य की जानकारियों का पूर्ण इतिहास इस प्रकार के रोचक सिलसिले से भरा हुआ है, तथा इस सिलसिले में जो हज़ारों वर्ष का अनुभव प्रकट करता है किसी अन्वेषक के लिए इस परिणाम पर पहुंचना बहुत कठिन नहीं रहता है कि मनुष्य अपने आप में समस्त आवश्यक शारीरिक अंगों तथा मानसिक एवं नैतिक नियमों से सम्मानित होकर इस संसार में ऐसी हालत के साथ भेजा गया है कि वह इस संसार में (जो उसके सम्पूर्ण

★ दुनिया में जैसे हाथ-पैर और शारीरिक स्वास्थ्य रखते हुए भी हज़ारों-लाखों लोग बिना परिश्रम सुस्ती और आलस्य के साथ ही पेट भरने के लिए तैयार हैं वैसे ही जानकारियों के बारे में भी लाखों और करोड़ों लोग अनुसंधानों के लिए नेचरी सामान के उपलब्ध होने के बावजूद फिर अपने मास्तिष्क को परेशान करना नहीं चाहते हैं तथा जिन बातों की वास्तविकता को अपने अल्प चिन्तन से भी मालूम कर सकते हैं उनके लिए भी स्वयं कष्ट उठाना नहीं चाहते और मात्र अंधों की भांति एक के ही अनुकरण के साथ मतलब पूर्ण करते हैं और यही कारण है कि दुनिया में आज तक एक की ग़लती लाखों और करोड़ों रूहों पर प्रभावी देखी जाती है।

नेचर की स्थिति के अनुसार तथा परस्पर संबंध और सम्पर्क के साथ संलग्न की गई है) स्वयं अपना मार्ग ढूंढे और स्वयं अपनी शारिरिक एवं आध्यात्मिक (रूहानी) भलाई और कल्याण के संसाधनों का ज्ञान प्राप्त करे और लाभ उठाए।

अत: इस प्रकृति के नियम को छोड़ कर या वास्तविक दार्शनिक की बुद्धिमत्ता के विरुद्ध अगर हम एक यह काल्पनिक तर्क क़ायम करें कि चूंकि मनुष्य को अपने चारों ओर देखना आवश्यकताओं में से है और देखने के लिए उसके चेहरे पर जो दो आंखें स्थापित की गई हैं वह जिस समय सामने की वस्तुओं को देखने में व्यस्त होती हैं उस समय उसके पीछे से यदि उसकी तबाही का सामान किया गया हो तो वह आगे की दो ही आंखों की शर्त के होने के साथ अवश्य है कि वह पीछे का हाल देखने से वंचित रहे। अत: संभव न था कि ख़ुदा जो दयालु, कृपालु और दार्शनिक है वह उसे सिर के पीछे की ओर भी ऐसा दो आंखें प्रदान न करता कि जिस से वह उपरोक्त कथित खतरे से मुक्ति पाने का उपाय न कर सकता। इसलिए जबकि सिर के पीछे की ओर दो आंखों के होने की आवश्यकता है। इसलिए अनिवार्य हुआ कि ख़ुदा अपने बन्दों की अतिरिक्त सुरक्षा के उद्देश्य से ऐसी आंखें प्रदान करे या इसी प्रकार का एक और तर्क हम यह स्थापित करें कि चूंकि मनुष्य की बुद्धि ग़लती करती है और उसे आज तक यह ज्ञान भी प्राप्त नहीं है कि बम्बई से जिस जहाज़ पर वह विलायत के लिए जाता है उसके जाने की तिथि से सप्ताह या डेढ़ सप्ताह के पश्चात् समुद्र में जो भयंकर तूफान आने वाला है और जिसमें उसका जहाज़ डूबने को है उसे पहले से ज्ञात कर सके। अत: जिस अवस्था में न स्वयं मनुष्य अपने ज्ञान और जानकारी से स्वयं को तूफान के विनाश और भयंकर प्रभाव से सुरक्षित कर सकता

है और वह ख़ुदा (जो दयालु, कृपालु तथा प्रत्येक भूल-चूक से मुक्त और हर बात की वास्तविकता से परिचित है) अपने निजी सन्देश द्वारा तुरन्त अपने बन्दों की सहायता करे। तो फिर हम असहाय बन्दे अपने प्राण को विनाश के तूफ़ान से कैसे सुरक्षित रख सकते हैं। अत: उस सर्वशक्तिमान ख़ुदा की दूरदर्शिता, दया तथा बन्दों पर दया दृष्टि यही चाहती है कि कभी-कभी वह हमें तूफ़ान के आने की इतने समय पहले ख़बर देता रहे कि जिससे हमें स्वयं को तथा जहाज़ को बचाने का अवसर मिल सके।

अत: स्पष्ट है कि जो लोग वास्तविकता को समझने की पर्याप्त महारत रखते हैं और तर्क शास्त्र के सिद्धान्तों का भली भांति से ज्ञान रखते हैं वे हमारे इन दोनों तर्कों को लंगड़ा और निराधार समझेंगे। क्यों? इसलिए कि प्रथम दोनों तर्कों में "आवश्यकता" का जो कुछ अनुमान क़ायम किया गया है और जिसे हमने अपने परिणाम का कारण ठहराया है वह केवल हमारा एक भ्रमपूर्ण एवं काल्पनिक अनुमान है, नेचर के नियमों से उसका समर्थन नहीं होता। अपितु हम इसके विपरीत प्रकृति के नियमों को अलग करके ख़ुदा की अपनी बुद्धिमत्ता पर हाशिया चढ़ाते हैं। द्वितीय-चूंकि हमारा कारण काल्पनिक होता है। अत: इस से हम जो परिणाम स्थापित करते हैं वह भी काल्पनिक होता है तथा नेचर की घटनाएं स्वयं इस का खण्डन करती हैं। अत: जैसे पहले उदाहरण के बारे में हमारा परिणाम घटनाओं के विरुद्ध है और वास्तव में मनुष्य के सर के पीछे दो और अतिरिक्त आंखें स्थापित नहीं की गई हैं। दूसरे उदाहरण में उसी प्रकार इसके बावजूद कि आज तक सैकड़ों जहाज़ समुद्र में डूब चुके हैं तथा हज़ारों-लाखों जानें (प्राण) उनके साथ नष्ट हो चुकी हैं परन्तु आज तक ख़ुदा ने किसी जहाज़ वाले के पास अपना कोई सन्देश

(पैग़ाम) इस प्रकार का नहीं भेजा जिसकी दूसरे उदाहरण में चर्चा हुई है। अत: दोनों परिस्थितियों में हमारी "आवश्यकता" का अनुमान ख़ुदा की बुद्धिमत्ता या प्रकृति के नियमों के अनुकूल न था। इसलिए उसका परिणाम भी ख़ुदा की दूरदर्शिता के विरुद्ध होने के कारण नेचर (प्रकृति) की घटनाओं से पुष्टि न पा सका और केवल काल्पनिक सिद्ध हुआ। अत: बिल्कुल स्पष्ट है कि आप ने अपने इल्हाम की आवश्यकता पर जो तर्क प्रस्तुत किया है वह बिल्कुल ही हमारे दोनों तर्कों के समान है। क्योंकि आप का कहना है कि "जिस हालत में मनुष्य न स्वयं अपने ज्ञान और जानकारी से ग़लती★ से बच सके और न ख़ुदा (जो कृपालु, दयालु और प्रत्येक भूल-चूक से मुक्त तथा हर बात की मूल वास्तविकता से परिचित है) अपने सच्चे इल्हाम द्वारा अपने बन्दों की सहायता करे तो फिर हम असहाय बन्दे मूर्खता और ग़लती के अंधेरों से क्योंकर बाहर आएं तथा सन्देह एवं शंकाओं की विपत्तियों से किस प्रकार मुक्ति पाएं। इसलिए मैं दृढ़ राय से यह बात व्यक्त करता हूं कि उस सर्वशक्तिमान ख़ुदा की दूरदर्शिता, कृपा और बन्दों एवं सेवकों पर दया दृष्टि यही चाहती है कि कभी-कभी जब हित देखे तो ऐसे लोगों को पैदा करता रहे जो सच्ची आस्थाओं के जानने तथा उचित आचरण को ज्ञात करने में ख़ुदा की ओर से इल्हाम पाएं।"

अत: जिस स्थिति में आप के इस तर्क में भी "आवश्यकता" का अनुमान हमारे दोनों तर्कों के समान है और नेचर के नियम इसकी पुष्टि करने से इन्कारी हैं तो फिर ऐसा अनुमान काल्पनिक और भ्रमयुक्त होने के अतिरिक्त और कुछ सिद्ध नहीं होता। क्योंकि हम स्वयं तो बात-बात

★ कुल हालतों में इन्सान अपने "इल्म और वाक़िफ़ियत" (ज्ञान और जानकारी) में ग़लती नहीं करता है। (एडीटर बिरादर हिन्द)

में ऐसी सैकड़ों आवश्यकताएं स्थापित कर सकते हैं, किन्तु प्रश्न यह है कि ख़ुदा की दूरदर्शिता भी हमारी काल्पनिक आवश्यकताओं को स्वीकार करती है या नहीं? अन्वेषकों के नज़दीक वही आवश्यकता "आवश्यकता" हो सकती है जिसे नेचर या ख़ुदा की दूरदर्शिता ने स्थापित (क़ायम) किया हो। जैसे हमारी भूख के निवारण के लिए भोजन और सांस लेने के लिए वायु की हमारी आवश्यकता काल्पनिक नहीं बल्कि नेचरी (प्राकृतिक) है और इसलिए उसका भण्डार भी उसने मानव-जीवन के लिए उपलब्ध कर दिया है परन्तु जो आवश्यकता नेचर के नज़दीक स्वीकार करने योग्य नहीं है और उसे हम स्वयं अपने भ्रम से स्थापित करते हैं वह एक ओर जिस प्रकार से केवल काल्पनिक होती है दूसरी ओर उसे उसी प्रकार से कारण ठहरा कर हम जो परिणाम निकालते हैं वह भी काल्पनिक होने के कारण घटनाओं के साथ अनुकूलता नहीं रखता है, और यह स्थिति हमने अपने उदाहरणों में भली भांति स्पष्ट कर दी है।

द्वितीय इस बात के बारे में कि आप ने इल्हाम की परिभाषा में जो कुछ इबारत लिखी है उसका आप के तर्क से कहां तक संबंध है। इतना लिखना ही पर्याप्त है कि जिस हालत में आपने अपने इल्हाम की कुल बुनियाद जिस "आवश्यकता" पर स्थापित की है, वास्तव में वह आवश्यकता जबकि स्वयं निराधार है। अर्थात् नेचर के नज़दीक वह आवश्यकता स्वीकार करने योग्य नहीं है तो फिर यदि यह भी माना जाए कि आपने जो इमारत किसी ऐसी नींव पर खड़ी की है वह अच्छे मसाले के साथ भी निर्मित की है तथापि वह निराधार होने के कारण भ्रम के अलावा और कहीं नहीं ठहर सकती और जैसे उसकी नींव काल्पनिक है वैसे ही वह भी अन्तत: काल्पनिक रहती है।

इल्हाम की इस ग़लत आस्था के कारण संसार में लोगों को जितनी

हानि पहुंची है की उन्नति को जितनी रोक पहुंची है उसकी चर्चा करने को यद्यपि मेरा हृदय चाहता है परन्तु चूंकि विवादित मामले से इस समय कुछ संबंध नहीं है। इसलिए उसका वर्णन करना यहां पर स्थगित रखता हूं।

आप का नियाज़मंद- शिव नारायण अग्निहोत्री

लाहौर, 3 जून 1879 ई०

आदरणीय जनाब पंडित साहिब

आप का पत्र ठीक प्रतीक्षा के समय पहुंचा। बड़े खेद के साथ लिखता हूं कि आप को कष्ट भी हुआ और मुझे उत्तर भी ठीक-ठीक नहीं मिला। मेरे प्रश्न का निष्कर्ष तो यह था कि जबकि हमारा मोक्ष (कि जिसके उपायों की खोज करना आप के नज़दीक भी आवश्यक है) सही आस्थाओं, सही आचरण तथा शुभ कर्मों के ज्ञात करने पर आधारित है कि जिन में मिथ्या बातों की मिलावट कदापि न हो तो इस स्थिति में हम इसके अतिरिक्त कि हमारे धार्मिक ज्ञानों और शरीअत (धार्मिक विधान) के आध्यात्म ज्ञानों को ऐसे सुरक्षित ढंग से लिया गया हो जो ख़राबियों तथा शरीअत ने जिन बातों को निषेध किया है, के हस्तक्षेप से पूर्णतया निर्दोष हो और किसी मार्ग (उपाय) से मुक्ति नहीं पा सकते। इसके उत्तर में आप यदि सीधे तौर पर चलते और शास्त्रार्थ (मुनाज़र:) की पद्धति का ध्यान रखते तो बौद्धिक सीमा के अनुसार आप का उत्तर (इन्कार की स्थिति में) केवल तीन बातों में से किसी एक बात में सीमित होता। **प्रथम-** यह कि आप सिरे से मुक्ति का ही इन्कार करते और उसके उपायों (साधनों माध्यमों) के अस्तित्व को अप्राप्य तथा प्राप्त करने को निषिद्ध ठहराते और उसकी आवश्यकता को चार आंखों की आवश्यकता की तरह केवल एक ऐसी अभिलाषा समझते जिसका पूर्ण होना संभव न हो। **द्वितीय** यह

कि मुक्ति को मानते परन्तु उस की प्राप्ति के लिए आस्थाओं एवं कर्मों का प्रत्येक झूठ और ख़राबी से पवित्र होना आवश्यक न जानते बल्कि केवल मिथ्या तथा सत्य और असत्य की मिलावट वाली बातों को भी मुक्ति का कारण ठहराते। **तृतीय-** यह कि मुक्ति प्राप्त करने को केवल सत्य की शर्त पर ही (जो असत्य की मिलावट से पूर्णतया पवित्र हो) आधारित रखते और यह दावा करते कि बुद्धि द्वारा प्रस्तावित उपाय ही केवल सत्य है और इस स्थिति में अनिवार्य था कि अपने उस दावे को सिद्ध करने के उद्देश्य से हमारे इस्तिक़राई अनुमान का (जो सबूतों के प्रकारों में से तीसरा प्रकार है जिसे हम पिछले लेख में प्रस्तुत कर चुके हैं) किसी बुद्धिमान का ग़लती से पवित्र उदाहरण प्रस्तुत करके और उस की तर्कशास्त्रीय विद्याओं में से कोई पुस्तक दिखा कर खण्डन कर देते। फिर यदि वास्तव में हमारा इस्तिक़राई क़ियास (अनुमान) का खण्डन हो जाता और हम उस पुस्तक की कोई ग़लती निकालने से असमर्थ रह जाते तो आप की हम पर विशिष्ट डिग्री हो जाती, परन्तु खेद कि आप ने ऐसा न किया। हज़ारों लेखकों की चर्चा तो की परन्तु नाम एक का भी न लिया और न उसकी किसी तर्क शास्त्रीय उदाहरण वाली पुस्तक का हवाला दिया। अब इस कष्ट देने से मेरा उद्देश्य यही है कि यदि इल्हाम की वास्तविकता में आप को अब तक कुछ संकोच है तो उपरोक्त बहस के तीनों प्रकारों में से बहस की एक पद्धति को स्थापित करने के लिए लीजिए और फिर उसका सबूत दीजिए, क्योंकि जब मैं इल्हाम की आवश्यकता पर सबूत स्थापित कर चुका तो अब शास्त्रार्थ (मुनाज़र:) के नियमानुसार आपका यही कर्त्तव्य है कि आप किसी क़ानूनी उपाय से उस सबूत का खण्डन करें और जैसा कि मैं कह चुका हूं कि आप के पास इस प्रकार के कानूनी उपाय के लिए केवल तीन ही मार्ग हैं जिनमें

से किसी एक मार्ग को अपनाने में आप कानूनी तौर पर अधिकार रखते हैं तथा यह बात आप के हृदय पर स्पष्ट रहे कि हमें इस बहस से केवल सत्य की अभिव्यक्ति अभीष्ट है, द्वेष और अहंकार जो मूर्खों का तरीका है कदापि लक्ष्य नहीं। मैं आपसे यह बहस हार्दिक प्रेम से मित्रवत् करता हूं और मित्रवत सद्स्वभाव के साथ आपके उत्तर का प्रतीक्षक हूं।

लेखक आपका नियाज़मंद
ग़ुलाम अहमद उफ़िया अन्हो
5, जून 1879 ई०

आदरणीय जनाब मिर्ज़ा साहिब

आप का पांचवें माह का लिखा पत्र मुझे मिला। अत्यन्त खेद है कि मैंने आप के इल्हाम के बारे में जो उत्तर के तौर पर लिखा था उस से आप संतुष्ट न हो सके। मेरा खेद और भी अधिक बढ़ता जाता है कि जब मैं देखता हूं कि आप ने मेरे उत्तर को स्वीकार न करने के बारे में कोई स्पष्ट और उचित कारण का भी उल्लेख नहीं किया। जिस से ज्ञात होता है कि आप ने उसके पढ़ने और समझने में सोच-विचार से काम नहीं लिया।

फिर आप के इस पत्र में एक और ख़ूबी यह मौजूद है कि आप एक जगह पर क़ायम रहते मालूम नहीं होते। पहले आप ने इल्हाम की आवश्यकता इस तर्क के साथ क़ायम की कि चूंकि मनुष्य की बुद्धि वास्तविकता ज्ञात करने से असमर्थ है और वह अपने अनुसंधानों में ग़लती करती है तो अवश्य है कि मनुष्य ख़ुदा की तरफ़ से इल्हाम पाए। मैंने जब आपकी इस आवश्यकता को काल्पनिक सिद्ध कर दिया और दिखा दिया कि ख़ुदा की दूरदर्शिता इस आवश्यकता को स्वीकार नहीं करती

तो आपने पहले स्थान को छोड़कर दूसरी ओर का मार्ग लिया और हमारे लेख को स्वीकार करने की बजाए या आरोप की शर्त पर किसी उचित सबूत के प्रस्तुत करने के अब उस सिलसिले को मुक्ति की समस्या के साथ आ लपेटा। अर्थात् मूल बहस को जो इल्हाम की वास्तविकता पर थी उसे छोड़कर मोक्ष की समस्या को ले बैठे और अब इस नए विवाद के साथ एक नई बहस के नियमों को स्थापित करने लगे। फिर इस पर एक विचित्र बात यह है कि आप पत्र के अन्त में लिखते हैं कि "यदि इल्हाम की वास्तविकता में आपको अभी कुछ संकोच है तो उपरोक्त कथित तीन खंडों में से अपनी बहस की पद्धति स्थापित करने के उद्देश्य से किसी एक खंड को लीजीए और फिर उसका सबूत दीजिए, क्योंकि जब मैं इल्हाम की आवश्यकता पर सबूत स्थापित कर चुका तो अब शास्त्रार्थ के नियमानुसार आप का यही कर्त्तव्य है कि आप किसी कानूनी उपाय से उस तर्क को तोड़ दें।" मानो एक नहीं दो बातें हो गई। आपने इल्हाम की आवश्यकता पर जो तर्क क़ायम किया था वह तो मेरे आदरणीय! मैं एक बार तोड़ चुका और उस काल्पनिक आवश्यकता पर इल्हाम की जो इमारत आपने स्थापित की थी उसे निराधार ठहरा चुका,किन्तु खेद है कि एक लम्बे समय की आदत के कारण उस की तस्वीर अभी तक आपकी आंखों में समाई हुई है और वह आदत इसके बावजूद कि आपको "इस बहस से केवल सच्चाई का प्रकटन अभीष्ट है।" परन्तु फिर आप को वास्तविकता के पास पहुंचने में रुकावट है। सच्चाई की पड़ताल उस समय तक अपने पैर नहीं जमा सकती है जब तक कि एक विचार जो आदत में समा गया है उसे एक अन्य आदत के साथ अलग करने का अभ्यास न किया जाए। किसी ईसाई का एक छोटा सा लड़का भी गंगा के पानी को केवल दरिया का पानी समझता है और इस से अतिरिक्त

पाप से मुक्ति इत्यादि का विचार उससे संबंधित नहीं। किन्तु एक पुराने विचार के रूढ़िवादी बूढ़े हिन्दू के नज़दीक इस पानी में एक डुबकी मारने से मनुष्य के सारे पाप दूर हो जाते हैं। एक ईसाई के नज़दीक ख़ुदा की तस्लीस सच है परन्तु एक मुसलमान या ब्रह्मो के नज़दीक वह बिल्कुल व्यर्थ है। यदि किसी ऐसे हिन्दू या ईसाई से बहस करके उसके विचार के निरर्थक होने को प्रकट भी कर दो (कि जिसका प्रकट करना कुछ कठिन बात नहीं) परन्तु वह उसके निरर्थक होने को स्वीकार नहीं करता है, यहां तक कि जब उत्तर देने से असमर्थ हो जाता है तो यह कहकर कि "यद्यपि मैं ठीक उत्तर नहीं दे सकता हूं" परन्तु मैं इसे मानता हूं और हृदय से इसे ठीक समझता हूं।" यह हृदय की गवाही उसकी वही आदत है जिसे दार्शनिकों के नज़दीक दूसरी तबीयत का नाम दिया जाता है। अत: जिस इल्हाम को आप मानते हैं उसका भी वही हाल है। आप के नज़दीक एक लम्बे समय की आदत के कारण वह विचार ऐसा दृढ़ और सही हो गया है कि आप उस के विरुद्ध हमारा मज़बूत से मज़बूत सबूत भी संतोषजनक नहीं पाते हैं और जब एक ओर से अपने सबूत को कमज़ोर देखते हैं तो बदल कर दूसरी ओर चल देते हैं। इस प्रकार से निर्णय होना असंभव है। आज तक किसी से हुआ भी नहीं और न भविष्य में होने की आशा है।

आप मुझ से उन लेखकों के नाम मांगते हैं जिनकी पुस्तक या अनुसंधानों में ग़लती नहीं है, हालांकि जिन विद्याओं का मैंने वर्णन किया था उनके जानने वालों के नज़दीक उनकी पुस्तक का हाल छुपा हुआ नहीं है। क्या आपने गणित विद्या (हिसाब) की पुस्तकें स्वयं नहीं देखी हैं? क्या भौतिक विज्ञान की पुस्तकें आपकी दृष्टि से नहीं गुज़री हैं? निस्सन्देह नवीन पुस्तकें जिनका अंग्रेज़ी से फ़ारसी या अरबी में अनुवाद नहीं हुआ,

कदाचित् उन का हाल आप से छुपा हो परन्तु कुछ यूनानियों की पुस्तक जैसे इक्लीदिस की रेखागणित विद्या इत्यादि की संभवतः आप जानकारी रखते होंगे। स्पष्ट है कि रेखागणित के सत्य और सही होने में आज तक दुनिया में किसी विद्वान को (चाहे वह इल्हाम का मानने वाला हो या इन्कारी, ख़ुदा की इबादत करने वाला हो या नास्तिक) आपत्ति नहीं है। यदि आप की राय में वह सही न हो तो आप कृपा करके मुझे उसकी ग़लतियों से अवगत करें।

फिर आप यह भी लिखते हैं कि मैंने आप के लेख का उत्तर देने में मुनाज़रः (शास्त्रार्थ) के नियमों को दृष्टिगत नहीं रखा। इसके उत्तर में मैं केवल इतना कहना पर्याप्त समझता हूं कि जिस समय मेरे और आप के कुल लेख बिरादर-ए-हिन्द पत्रिका में प्रकाशित किए जाएंगे उस समय न्यायप्रिय दर्शक स्वयं ही फैसला कर लेंगे कि आप का यह कहना सही है या ग़लत।

यदि आप लिखें तो अगले माह की पत्रिका से मैं बहस को प्रकाशित करना आरंभ कर दूं।

आपका नियाज़मंद
शिवनारायण अग्निहोत्री
लाहौर, 12 मई 1879 ई०

आदरणीय जनाब पंडित साहिब

आप का सहानुभूति-पत्र ठीक उस समय पहुंचा जब मैं कुछ आवश्यक मुकद्दमों के लिए अमृतसर जाने वाला था। चूंकि इस समय मुझे दो घंटे की भी फ़ुर्सत नहीं, इसलिए आपका उत्तर वापस आकर लिखूंगा। और यदि ख़ुदा ने चाहा तो तीन दिन या अधिक से अधिक

चार दिन के बाद वापस आ जाऊंगा और फिर आते ही उत्तर लिख कर आपकी सेवा में भेज दूंगा। आप कहते हैं कि ये लेख 'बिरादरे हिन्द' में दर्ज हों, परन्तु मेरा मशवरा यह है कि इन लेखों के साथ दो मध्यस्थों की राय भी हो तब लिखे जाएं। परन्तु अब कठिनाई यह कि मध्यस्थ कहां से लाएं। विवशतावश यही प्रस्ताव उचित है कि आप ब्रह्म समाज के लेखक प्रकाण्ड विद्वानों में से हो चुन कर जो ख़ुदा से डरने वाला, विनीत, अन्वेषक तथा अंहकार और पक्षपात रहित हो मुझे सूचित करें और एक अंग्रेज़ जिनकी प्रवीणता और अद्वितीयता को आप मानते हैं का चयन करके उससे भी अवगत करें तो बहुत संभव है कि मैं इन दोनों को स्वीकार करूंगा। मैंने सरसरी तौर पर सुना है कि आप के ब्रह्म समाज में एक सज्जन केशव चन्द्र नामक बहुत योग्य और दक्ष व्यक्ति हैं यदि यह सत्य है तो वही स्वीकार हैं, उनके साथ एक अंग्रेज़ कर दीजिए, परन्तु निर्णायकों को यह अधिकार न होगा कि केवल इतना ही लिखें कि हमारी राय में यह है या वह है बल्कि प्रत्येक सदस्य के तर्क को अपने वर्णन से तोड़ना या यथावत् (बहाल) रखना होगा। दूसरे यह उचित है कि उस लेख को अलग-अलग करके न लिखा जाए कि उसमें निर्णायक को दूसरे नम्बरों की लम्बे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है बल्कि उचित है कि यह सम्पूर्ण लेख एक ही बार 'बिरादरे हिन्द' में लिखा जाए अर्थात् तीन लेख हमारी ओर से और तीन ही आप की ओर से हों और उन पर दोनों निर्णायकों की स्पष्ट राय लिखी हो और यदि आप की दृष्टि में इस बार निर्णायकों की राय लिखने में कुछ परेशानी हो तो फिर इस स्थिति में यह उचित है कि जब मैं ख़ुदा की कृपा से अमृतसर से वापस आकर तीसरा लेख आप के पास भेज दूं तो आप भी उस पर कुछ संक्षेप में लिख कर तीनों लेख एक ही बार में छाप दे तथा उन लेखों के अन्त में यह भी

लिखा जाए कि अमुक- अमुक निर्णायक इस पर अपनी-अपनी स्पष्ट राय लिखें और फिर उस पत्रिका की दो प्रतियां निर्णायकों की सेवा में मुफ़्त भेजी जाएं। भविष्य में जैसी आप की इच्छा हो उससे अवगत करें शीघ्र अवगत करें। मैंने चलते-चलते बड़ी शीघ्रता से यह पत्र लिख दिया है शब्दों की न्यूनाधिकता से क्षमा करें।

लेखक: आप का नियाज़मंद
गुलाम अहमद उफ़िया अन्हो
17, जून 1879 ई०

उत्तर का उत्तर

बावा नारायण सिंह साहिब सेक्रेटरी आर्य समाज अमृतसर 18 फ़रवरी 1879 ई० के अख़बार 'आफ्ताब' में प्रकाशित

प्रथम बावा साहिब ने यह प्रश्न किया है कि इस बात का क्या सबूत है कि ख़ुदा रूहों का स्त्रष्टा है तथा उनको पैदा कर सकता है। इसके प्रत्युत्तर में आशय को प्रारंभ करने से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि मुनाज़रः (शास्त्रार्थ) की कला के नियमों के अनुसार आप का यह कर्त्तव्य कदापि नहीं हो सकता कि रूहों के सृष्टि होने का आप हम से सबूत मांगें अपितु यह अधिकार हमें पहुंचता है कि हम आप से रूहों (आत्माओं) के अनुत्पत्त (स्वयं भू) होने का प्रमाण मांगें, क्योंकि आप इसी कथित शीर्षक वाले अखबार में स्वयं अपनी मुबारक ज़ुबान से इक़रार कर चुके हैं कि परमेश्वर सामर्थ्यवान है और जगत की सम्पूर्ण व्यवस्था का वही व्यवस्थापक है। अत: स्पष्ट है कि इस नई बात का सबूत देना आप का दायित्व है कि परमेश्वर प्रथम सामर्थ्यवान होकर

फिर सामर्थ्य विहीन क्योंकर बन गया। हमारा दायित्व कदापि नहीं कि हम सबूत देते फिरें कि परमेश्वर जो अनादि काल से सामर्थ्यवान है वह अब भी सामर्थ्यवान है। अत: हज़रत यह आपको चाहिए था कि हमें इस बात का पूर्ण सबूत देते कि परमेश्वर तथा कथित सामर्थ्यवान होने के बावजूद फिर रूहों के पैदा करने से क्यों असमर्थ रहेगा। हम से यह प्रश्न नहीं किया जा सकता कि परमेश्वर जो सामर्थ्यवान स्वीकार किया जा चुका है, रूहों के पैदा करने की किस प्रकार क़ुदरत (शक्ति) रखता है, क्योंकि ख़ुदा के सामर्थ्यवान होने को तो हम और आप दोनों मानते हैं। अत: इस समय तक तो हम दोनों में कोई विवाद न था फिर विवाद तो आप ने पैदा किया कि उस सामर्थ्यवान परमेश्वर को रूहों को पैदा करने से असमर्थ समझा। इस स्थिति में आप स्वयं निर्णायक बनें और बताएं कि सबूत देना किस का दायित्व है?

यदि हम कुछ कमी के तौर पर यह स्वीकार भी कर लें कि यद्यपि दावा आपने किया परन्तु उसे सिद्ध करना हमारे दायित्व में है। तो आप को مژدہ हो कि हम ने 21, फरवरी के 'सफ़ीरे हिन्द' में ख़ुदा के स्रष्टा (ख़ालिक़) होने का पूर्ण प्रमाण दे दिया है। जब आप न्याय की दृष्टि से कथित पर्चे को देखेंगे तो आप की पूर्ण रूप से संतुष्टि हो जाएगी, तथा स्वयं स्पष्ट है कि ख़ुदा तो वही होना चाहिए जो सृष्टियों का स्रष्टा हो न यह कि शक्तिशाली सम्राटों के समान दूसरों पर क़ब्ज़ा करके ख़ुदाई करे।

यदि आप के हृदय में यह सन्देह पैदा होता है कि परमेश्वर अपना नमूना पैदा नहीं कर सकता। शायद उसी प्रकार रूहों के पैदा करने पर भी सामर्थ्यवान न होगा। इसका उत्तर भी 9, फरवरी के कथित पर्चे (अखबार) में ठोस तौर पर दिया गया है, जिसका सारांश यह है कि ख़ुदा ऐसे कार्य कदापि नहीं करता जिन से उसकी अनादि विशेषताओं का पतन

अनिवार्य हो। जैसे वह अपना भागीदार पैदा नहीं कर सकता अपने आप को मार नहीं सकता। क्योंकि यदि ऐसा करे तो उसकी अनादि विशेषता जो व्यक्तिगत तौर पर अकेला होना तथा अमर जीवन है समाप्त हो जाएगी। अत: वह पुनीत ख़ुदा अपनी अनादि विशेषताओं के विपरीत कोई कार्य कदापि नहीं करता, शेष समस्त कार्यों पर सामर्थ्यवान है। अत: आप ने जो रूहों की पैदायश को स्रष्टा के भागीदार की पैदायश पर कल्पना की तो ग़लती की। मैं पहले कह चुका हूं कि आप का यह क़यास मअल फ़ारिक (अर्थात दलील जो क्रमबद्ध न हो) है, हाँ यदि यह सिद्ध कर देते कि रूहों का पैदा करना भी अपने जैसा पैदा करने जैसा है ख़ुदा की किसी श्रेष्ठता और प्रतापी विशेषता के विपरीत है तो आप का दावा निस्सन्देह सिद्ध हो जाता।

अत: आप ने जो लिखा है कि यह प्रकट करना चाहिए कि ख़ुदा ने रूह कहां से पैदा कीं। इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि आपको ख़ुदा के क़ुदरती कार्यों से बिल्कुल इन्कार है और उसको मनुष्य के समान साधनों का मुहताज समझते हैं और यदि आप का इस वर्णन से तात्पर्य यह है कि हमारी समझ में नहीं आता कि परमेश्वर रूहों को किस प्रकार पैदा कर लेता है तो इस भ्रम को दूर करने के लिए पहले भी लिखा गया था कि परमेश्वर की पूर्ण क़ुदरत में कदापि यह शर्त नहीं कि मनुष्य की समझ में अवश्य आ जाया करे। दुनिया में इस प्रकार के हज़ारों नमूने मौजूद हैं कि मनुष्य की समझने की शक्ति उन की वास्तविकता तह तक नहीं पहुंच सकती तथा इसके अतिरिक्त एक बात का बुद्धि में न आना और बात है तथा उसका असंभव सिद्ध होना और बात। इस बात के सबूत का न होना कि ख़ुदा ने किस प्रकार रूहों को बना लिया, इस बात को सिद्ध नहीं कर सकता कि ख़ुदा से रूहें नहीं बन सकती थीं क्योंकि किसी

वस्तु का ज्ञान न होने से उस वस्तु का न होना अनिवार्य नहीं होता। क्या संभव नहीं कि एक कार्य ख़ुदा की क़ुदरत के अधीन तो हो, परन्तु हमारी अपूर्ण बुद्धि उसके रहस्यों तक न पहुंच सके? बल्कि क़ुदरत तो वास्तव में इसी बात का नाम है साधनों की आवश्यकता के दोष से पवित्र और पाक तथा मानवीय समझ से श्रेष्ठतम हो। **प्रथम-** ख़ुदा को सामर्थ्यवान कहना, और फिर ज़ुबान पर यह लाना कि उसकी क़ुदरत भौतिक साधनों से बाहर नहीं जाती। वास्तव में अपनी बात का स्वयं खण्डन करना है। क्योंकि यदि वह अपनी हद (सीमा) तक सामर्थ्यवान है तो फिर किसी सहारे तथा आश्रय का मुहताज होना क्या मायने रखता है। क्या आप की पुस्तकों में क़ादिर और सर्वशक्तिमान उसी को कहते हैं जो साधनों के माध्यम के बिना उसकी क़ुदरत का कारखाना बन्द रहे और केवल उसके आदेश से कुछ भी न हो सके। शायद आप के यहां लिखा होगा, परन्तु हम लोग तो ऐसे कमज़ोर को ख़ुदा नहीं जानते। हमारा तो वह क़ादिर ख़ुदा है जिसकी यह विशेषता है कि जो चाहा वह हो गया और जो चाहेगा वह होगा।

तत्पश्चात् बावा साहिब अपने उत्तर में मुझ से कहते हैं कि जिस प्रकार तुम ने यह मान लिया है कि ख़ुदा दूसरा ख़ुदा नहीं बना सकता। इसी प्रकार यह भी मानना चाहिए कि ख़ुदा रूह पैदा नहीं कर सकता। इस समझ तथा ऐसे प्रश्न से यदि मैं आश्चर्य न करूं तो क्या करूं। मेरे दोस्त ! मैं तो इस भ्रम का आपको कई बार उत्तर दे चुका अब मैं बार-बार कहां तक लिखूं। मैं आश्चर्य में हूं कि आप को यह स्पष्ट अन्तर क्यों समझ में नहीं आता और हृदय से यह पर्दा क्यों नहीं उठता कि जो रूहों के पैदा करने को दूसरे ख़ुदा की पैदायश पर कल्पना करना ग़लत विचार है, क्योंकि दूसरा ख़ुदा बनाने में परमेश्वर की वह अनादि विशेषता

जो अकेला भागीदार रहित होने की है वह समाप्त हो जाएगी, किन्तु रूहों की पैदायश में ख़ुदा की किसी विशेषता का निवारण नहीं बल्कि पैदा न करने में निवारण है क्योंकि इस से परमेश्वर की क़ुदरत की विशेषता पूर्ण सहमति से स्वीकार हो चुकी है गुप्त रहेगी और ठोस सबूत तक नहीं पहुंचेगी, इसलिए कि जब परमेश्वर ने स्वयं अपने आविष्कार से साधनों के माध्यम के बिना कोई वस्तु अपनी पूर्ण-क़ुदरत से पैदा ही नहीं की तो हमें कहां से मालूम हो कि उसमें व्यक्तिगत क़ुदरत भी है और यदि यह कहो कि उसमें कुछ व्यक्तिगत क़ुदरत नहीं तो इस आस्था से वह पराश्रय हैं अर्थात् अन्य का मुहताज ठहरेगा। और यह बात बौद्धिक तौर पर सर्वथा ग़लत है। अत: परमेश्वर का रूहों का स्रष्टा होना तो ऐसी आवश्यक बात है जो रूहों का सृष्टि होना स्वीकार किए बिना जैसे ख़ुदाई का सम्पूर्ण कारखाना बिगड़ा जाता है। किन्तु दूसरा ख़ुदा पैदा करना व्यक्तिगत तौर पर एकत्व की विशेषता के विपरीत है फिर परमेश्वर ऐसी बात की ओर किस प्रकार ध्यान दे कि जिस से उसकी अनादि विशेषता का असत्य होना अनिवार्य हो। इसके अतिरिक्त इस स्थिति में कि रूहें अनुत्पत (ग़ैर मख़्लूक़) और अनंत मानी जाएं तो समस्त रूहें अनादि और असीमित विशेषता के होने में ख़ुदा की भागीदार हो जाएंगी तथा इसके अतिरिक्त परमेश्वर भी अपनी अनादि विशेषता से जो बिना साधनों के पैदा करना है से वंचित रहेगा तथा यह मानना पड़ेगा कि परमेश्वर की केवल रूहों पर जमादारी ही जमादारी है उनका स्रष्टा और ख़ुदा नहीं।

तत्पश्चात् बावा साहिब अपने इसी उत्तर में रूहों के अनंत होने का विवाद ले बैठे हैं जिसका हम 9 और 16 फरवरी के 'सफीरे हिन्द' अख़बार में 14 ठोस तर्कों द्वारा खण्डन कर चुके हैं परन्तु बावा साहिब अब तक इन्कार किए जाते हैं। अत: उन पर स्पष्ट रहे कि यों तो इन्कार

करना और न मानना आसान बात है तथा प्रत्येक को अधिकार है कि जिस बात पर चाहे जमा रहे, परन्तु हम तो तब जानते कि आप हमारे किसी तर्क का खण्डन करके दिखाते और अनंत होने के कारण प्रस्तुत करते। आपको समझना चाहिए कि जिस स्थिति में रूहें कुछ स्थानों पर नहीं पाई जातीं तो अनंत किस प्रकार हो गईं। क्या अनन्त का यही हाल हुआ करता है कि जब एक स्थान पर पधारे तो दूसरा स्थान खाली रह गया। यदि परमेश्वर भी इसी प्रकार का अनंत है तो ख़ुदाई का कारखाना खतरे के स्थान में है। खेद कि आप ने हमारे उन ठोस तर्कों के बारे में कुछ न सोचा तथा कुछ विचार न किया और यों ही उत्तर लिखने बैठ गए। जबकि आपकी निर्णायक स्वभाव पर यह अनिवार्य था कि अपने उत्तर में इस बात को अनिवार्य समझते कि हमारा प्रत्येक तर्क लिखकर उसके मुकाबले में अपना तर्क लिखते, परन्तु कहां से लिखते? और आश्चर्य तो यह है कि उसी उत्तर में आप का यह इक़रार भी लिखा है कि समस्त रूहें सृष्टि के प्रारंभ में पृथ्वी पर जन्म लेती हैं और सवा चार अरब वर्ष की अवधि तक संसार का सिलसिला बना रहता है, इससे अधिक नहीं। अत: हे मेरे मित्रो और प्यारो ! अपने हृदय में स्वयं ही सोचो तथा अपने कथन पर स्वयं ही विचार करो कि जो पैदायश एक निर्धारित समय से प्रारंभ हुई और एक सीमित स्थान में उन सब ने जन्म लिया और एक सीमित अवधि तक उनकी पैदायश और नस्ल का क्रम समाप्त हो गया, तो ऐसी पैदायश अनन्त किस प्रकार हो सकती है। आप ने पढ़ा होगा कि दर्शन शास्त्र के बनाए हुए सिद्धान्त के अनुसार यह नियम निर्धारित है कि कुछ सीमित वस्तुओं में एक सीमित अवधि तक जो कुछ वृद्धि होती रही तो वृद्धि के पश्चात् भी वे वस्तुएं सीमित रहेंगी। इससे यह सिद्ध हुआ कि यदि गिनती के कुछ जानवर कुछ समय तक बच्चा देते रहें तो उन

की सन्तान दर्शन शास्त्र के तथाकथित सिद्धान्त के अनुसार एक मात्रा से कुछ अधिक न होगी और स्वयं हिसाब की दृष्टि से प्रत्येक बुद्धिमान समझ सकता है कि जितनी पैदायश चार अरब में होती है यदि इस अवधि के स्थान पर साढ़े आठ अरब मान लें तो निस्सन्देह इस अन्तिम कथित स्थिति में पैदायश प्रथम स्थिति से दोगुनी होगी। हालांकि यह बात नितान्त व्यापक बातों में से हैं कि अनंत कभी दोगुना नहीं हो सकता। यदि रूहें अनन्त होतीं तो इतनी कम अवधि में क्यों सीमित हो जातीं कि जिन के दोगुना होने को बुद्धि प्रस्तावित कर सकती है और न कोई प्रवीण व्यक्ति समय तथा स्थान में सीमित वस्तु को अनंत कहेगा। बावा साहिब कृपा करके हमें बता दें कि यदि सवा चार अरब की पैदायश का नाम अनंत है तो साढ़े आठ अरब की पैदायश का नाम क्या रखना चाहिए। अत: यह कथन सर्वथा ग़लत है कि वर्तमान रूहें समय और स्थान में सीमित होकर फिर भी अनंत हैं क्योंकि निश्चित अवधि में नस्ल की पैदायश निश्चित मात्रा (संख्या) से कभी अधिक नहीं और यदि यह कथन है कि समस्त रूहें एक बार में पृथ्वी पर जन्म लेती हैं। तो इस का ग़लत होना स्पष्ट है, क्योंकि पृथ्वी सीमित है और रूहें आप के कथनानुसार असीमित। फिर असीमित सीमित में किस प्रकार समा सके।

और यदि कहो कि कुछ प्राणी मुक्ति न पाने के कारण नई दुनिया में नहीं आते। अत: यह आप के सिद्धान्त के विरुद्ध है क्योंकि जब इस से पहले कहा गया है कि आप का यह सिद्धान्त है कि हर नई दुनिया में सभी वे रूहें जो पिछली सृष्टि में मोक्ष पाने से रह गई थीं अपने कर्मों का फल भोगने के लिए जन्म लेती हैं। कोई जीव जन्म लेने से बाहर नहीं रहता। अब अन्य तर्कों से दृष्टि हटाते हुए यदि इसी एक तर्क पर जो समय और स्थान में सीमित होने का है विचार किया जाए तो स्पष्ट तौर

पर सिद्ध है कि आप को रूहों को बहुत मानने से भागने का कोई स्थान नहीं और स्वीकार करने के अतिरिक्त कुछ बन नहीं पड़ता। विशेष तौर पर यदि उन सब तर्कों को जो प्रश्न नम्बर एक में लिखे जा चुके हैं उन तर्कों के साथ जो इस रीव्यू में लिखे जाएं मिला कर पढ़ा जाए तो कौन फैसला करने वाला है जो इस परिणाम तक नहीं पहुंच सकता कि ऐसे स्पष्ट सबूत का इन्कार करना सूर्य पर धूल फेंकना है। पुनः खेद कि बावा साहिब अब तक यही कल्पना किए बैठे हैं कि रूहें अनंत हैं और मुक्ति पाने से कभी समाप्त नहीं होंगी तथा स्थिति की वास्तविकता का ज्ञान हुआ कि कुल रूहें पांच अरब के अन्दर हमेशा समाप्त हो जाती हैं तथा इस के अतिरिक्त हर प्रलय (क़यामत) के समय मृत्यु से उनका अन्त हो जाता है। यदि अनंत होतीं तो उन दोनों कथित हालतों में उनका समाप्त होना क्यों आर्य समाज के सिद्धान्तों का भाग ठहरता। बड़ी आश्चर्यजनक बात है कि बावा साहिब स्वयं अपने ही सिद्धान्त से विमुख हो रहे हैं। इतना विचार नहीं करते कि जो वस्तुएं एक हालत में समाप्त होने योग्य हैं वे दूसरी हालत में भी यही योग्यता रखती हैं। यह नहीं समझते कि बरतन में पड़ी हुई वस्तु अपने बरतन से कभी अधिक नहीं होती। अतः जबकि समस्त रूहें स्थान और समय के बरतन में दाखिल होकर अपना अनुमान हर नई दुनिया में ज्ञात करा जाती हैं और पैमाने हमेशा स्थान और समय से मापे जाते हैं। तो फिर आश्चर्य कि बावा साहिब को अभी तक रूहों के सीमित होने में क्यों सन्देह शेष है। मैं बावा साहिब से प्रश्न करता हूं कि जैसे आप के कथनानुसार ये सब रूहें जो आपके विचार में अनंत हैं सब ही दुनिया की ओर गति करती हैं। यदि इसी प्रकार अपने मुक्ति प्राप्त भाइयों की ओर गति करें तो यह कौन सी बुद्धि से दूर की बात है और कौन सा तर्क शास्त्रीय तर्क उनको इस गति से रोकता है और जो

इन्नी और लिम्मी तर्क से अनिवार्य होता है कि उन सब का दुनिया की ओर जाना हर सृष्टि के दौर में वैध बल्कि अनिवार्य है। परन्तु इन सब का मुक्ति प्राप्तों के कूचे की ओर कूच करना निषेध और असंभव है। मुझे मालूम नहीं होता कि इस संसार की ओर कौन सी मज़बूत सड़क है कि समस्त रूहें उस पर आसानी से आती-जाती हैं, एक भी बाहर नहीं रह जाती और उन मुक्ति प्राप्त लोगों के मार्ग में कौन सा पत्थर रोक बना हुआ है कि उन सब का उस ओर जाना ही असंभव है। क्या वह ख़ुदा जो समस्त रूहों को मृत्यु और जन्म दे सकता है सब को मुक्ति नहीं दे सकता। जब एक प्रकार से समस्त रूहों की हालत परिवर्तित हो सकती है तो फिर क्या कारण कि दूसरे प्रकार से वह हालत परिवर्तित होने योग्य नहीं और क्या इसके अतिरिक्त यह बात संभव नहीं कि ख़ुदा उन सब रूहों का यह नाम रख दे कि मुक्ति प्राप्त हैं जैसे अब तक यह नाम रखा हुआ है कि मुक्ति प्राप्त नहीं। क्योंकि जिन वस्तुओं की ओर नकारात्मक संबंध वैध हो सकता है निस्सन्देह उन वस्तुओं की ओर सकारात्मक संबंध भी वैध है, इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट रहे कि यह सब विवाद कि समस्त मौजूद रूहें मुक्ति पा सकती हैं इस दृष्टि से बहस के अन्तर्गत नहीं कि इस विवाद का विषय जो सामान्य मुक्ति है किसी वास्तविक भाग के समान स्पष्टीकरण के योग्य है बल्कि यहां पर बहस का विषय पूर्ण बात है अर्थात् हम पूर्ण रूप से बहस करते हैं कि वर्तमान रूहों ने जो अभी मुक्ति नहीं पाई क्या आर्य समाज के सिद्धान्त के अनुसार इस बात की योग्यता रखती हैं या नहीं कि किसी प्रकार का सामान्य अवस्था चाहे मुक्ति हो या कुछ और हो जो उन सब पर छा जाए। अत: हम आर्य सज्जनों के आभारी हैं कि उन्होंने स्वयं ही इक़रार कर दिया कि यह सामान्य अवस्था कुछ परिस्थितियों में सब रूहों पर

आती है। जैसे मृत्यु और जन्म की स्थिति सब मौजूद रूहों पर आ जाती है। अब बावा साहिब स्वयं ही इन्साफ़ करें कि जिस हालत में दो मूल विषयों में इस सामान्य अवस्था को स्वयं ही मान गए तो फिर इस तीसरे विषय में जो सब का मुक्ति पाना है, इन्कार करने का क्या कारण है।

फिर बावा साहिब यह कहते हैं कि पृथ्वी के अतिरिक्त सूर्य और चन्द्रमा तथा सब सितारों में भी प्राणी बड़ी प्रचुरता मात्रा में आबाद हैं और इस से यह समझ बैठे हैं कि बस सिद्ध हो गया कि रूहें अनंत हैं। अत: बावा साहिब पर स्पष्ट रहे कि प्रथम तो यह विचार कुछ दार्शनिकों का है जिसे यूरोप के दार्शनिकों ने लिया है और हमारा वार्तालाप आर्य समाज के सिद्धान्त पर है। इसके अतिरिक्त यदि हम यह भी मान लें कि आर्य समाज का भी यही सिद्धान्त है तो फिर भी क्या लाभ कि इस से भी आप का मत्लब प्राप्त नहीं होता। इस से तो केवल इतना निकलता है कि ख़ुदा तआला की सृष्टियां (मख़्लूकात) बड़ी प्रचुरता में है। रूहों के अनंत होने से इस तर्क का क्या संबंध है, परन्तु शायद बावा साहिब के मास्तिष्क में आम लोगों के मुहावरे के समान यह समाया हुआ होगा कि अनंत उसी वस्तु को कहते हैं जो प्रचुरता मात्रा में हो। बावा साहिब को यह समझना चाहिए कि जिस हालत में ये सब पृथ्वी के पिंड तथा आकाशीय ग्रह खगोल-शास्त्र के अनुसंधान के अनुसार कुछ गिनती के और सीमित हैं तो फिर जो वस्तुएं उनमें सम्मिलित हैं असंख्य किस प्रकार हो सकती हैं तथा जिस स्थिति में सम्पूर्ण पृथ्वी के पिंडों तथा आकाशीय ग्रहों को ख़ुदा ने गिना हुआ है तो फिर जो कुछ उनमें आबाद है वह उसकी गणना से कब बाहर रह सकता है। अत: ऐसे तर्कों से आप का दावा सिद्ध नहीं होता। काम तो तब बने कि जब आप यह सिद्ध करें कि समस्त मौजूद रूहें स्थान तथा समय की समस्त सीमाओं

एवं बन्धनों और जगत के वातावरण से उच्चतर हैं, क्योंकि ख़ुदा भी इन्ही मायनों में अनंत कहलाता है। यदि रूहें अनंत हैं तो रूहों में वही लक्षण सिद्ध करने चाहिएं। इसलिए कि अनंत एक शब्द है कि जिस में आप के कथनानुसार रूहें और स्रष्टा (ख़ुदा तआला) भागीदारी रखते हैं और उस की पूर्ण सीमा भी एक है। यह बात नहीं कि जब शब्द अनंत को ख़ुदा की ओर सम्बद्ध किया जाए तो उसके और अर्थ हैं और जब रूहों की ओर सम्बद्ध करें तो और अर्थ।

तत्पश्चात् बावा साहिब कहते हैं कि किसी ने आज तक रूहों की गणना नहीं की, इसलिए अनगिनत हैं। इस पर हिसाब (गणित) का एक नियम हमारे विवादित मामले से कुछ संबंध नहीं रखता प्रस्तुत करते हैं और इस से यह परिणाम निकालते हैं कि अनगिनत में कमी नहीं हो सकती। अत: बावा साहिब पर स्पष्ट रहे कि आप के सिद्धान्तों के अनुसार हम रूहों का एक अटकल अनुमान वर्णन कर चुके हैं और उनका स्थान एवं समय के पात्र (ज़र्फ) में सीमित होना भी उन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार वर्णन हो चुका है और आप अब तक गणित हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं जो अज्ञात तथा समझ में न आने वाली वस्तुओं से संबधित है। यदि आप का यह मतलब है कि जिस प्रकार ख़ज़ानची को अपने सुपुर्द हुई कुल जमा राशि रुपया, आना पाई का ज्ञान होता है, इसी प्रकार यदि मनुष्य को रूहों की कुल संख्या ज्ञात हो तो तब कमी योग्य होगी अन्यथा नहीं, अत: यह भी आपकी ग़लती है क्योंकि प्रत्येक बुद्धिमान जानता है कि जिस वस्तु का अटकल अनुमान किसी पैमाने के द्वारा ज्ञात हो चुका तो फिर बुद्धि अवश्य यही सलाह देगी कि जब उस ज्ञात अनुमान में से कुछ निकाला जाए तो निकाली गई संख्या जितनी मूल अनुमान में कमी हो जाएगी। भला यह क्या बात है कि जब मुक्ति प्राप्त में से एक बहुसंख्यक

समूह मुक्ति प्राप्त रूहों में सम्मिलित हो जाए तो न वह कुछ कम हों और न ये कुछ अधिक हों। हालांकि वे दोनों सीमित हैं तथा स्थान एवं समय के पात्रों में घिरा हुआ।

वाबा साहिब जो यह कहते हैं कि रूहों की संख्या हमें भी ज्ञात होनी चाहिए तब धन+ऋण (PLUS, MINUS) का नियम उन पर चरितार्थ होगा। बावा साहिब का भी यह कथन दर्शकों के देखने योग्य है। अन्यथा बिल्कुल स्पष्ट है कि PLUS भी ख़ुदा की तथा MINUS भी वही करता है और उसे मौजूद रूहों के सम्पूर्ण सदस्यों का ज्ञान है और एक-एक सदस्य उसकी दृष्टि में है। इस में क्या सन्देह है कि जब एक रूह निकल कर मुक्ति प्राप्त कर चुकी रूहों में जाएगी तो परमेश्वर को मालूम है कि यह सदस्य उस समूह में से कम हो गया तथा उस समूह में सम्मिलित होने के कारण उस में एक सदस्य की वृद्धि हुई। यह क्या बात है कि इस सम्मिलित होने और निकलने से वही पहली स्थिति बनी रही न मुक्ति प्राप्त कुछ अधिक हों और न वे रूहें कि जिनमें से कुछ रूहें नकल गईं, निकलने के बराबर कम हो जाएं। इसके अतिरिक्त हमें भी कोई तर्क शास्त्र का तर्क इस बात में रुकावट नहीं कि हम उस विश्वसनीय और सही बात पर राय न दे सकें कि जिन वस्तुओं का अनुमान स्थान एवं समय के पात्रों द्वारा हमें मालूम हो चुका है कि वे सम्मिलित होने और निकलने से वृद्धि तथा कमी के योग्य हैं। उदाहरणतया कुछ अनाज का भण्डार किसी कोठे में भरा हुआ है और लोग उस में से निकाल कर लिए जाते हैं। अत: यद्यपि हमें उस भण्डार का भार मालूम नहीं, परन्तु हम उसके सीमित होने की दृष्टि से राय दे सकते हैं कि जैसा निकाला जाएगा कम होता जाएगा।

और आप ने जो यह लिखा कि ख़ुदा का ज्ञान असीमित है और

रूहें भी असीमित हैं तथा ख़ुदा को रूहों की संख्या मालूम नहीं। आपका यह वर्णन अनुचित है और आदरणीय यह कौन कहता है कि ख़ुदा का ज्ञान असीमित नहीं। आपत्ति और विवाद तो इस में है कि उसकी बाहरी जानकारियां जो अस्तित्व के निर्धारणों से लाभप्रद हैं और एक समय में पाए जाते हैं तथा स्थान और समय के पात्रों के घिरे हुए एवं सीमित हैं, तो क्या उन मौजूद, सीमित निश्चित वस्तुओं की संख्या उसे मालूम है या नहीं। आप उन मौजूद सीमित वस्तुओं को मौजूद न होना तथा असीमित होना सिद्ध करें तो तब काम बनता है, अन्यथा ख़ुदा का ज्ञान मौजूद और ग़ैर मौजूद दोनों को घेरे हुए है। उसके अनंत होने से कोई वस्तु जो बाहरी निर्धारणों में क़ैद हो अनंत नहीं बन सकती। और आप में ख़ुदा के ज्ञान को अच्छा असीमित बना कर कि जिस से रूहों को परिधि भी न लिया जा सका और संख्या भी मालूम न हुई बावजूद इसके कि सब मौजूद थीं कोई ग़ायब न थी। क्या ख़ूब बात है कि आकाश और पृथ्वी ने तो रूहों को अपने पेट में डालकर उन की संख्या बताई फिर ख़ुदा को कुछ भी संख्या मालूम न हुई। यह विचित्र ख़ुदा है और उसका ज्ञान विचित्रतर। भला मैं आप से पूछता हूं कि ख़ुदा को जो मौजूद रूहों का ज्ञान है यह उसके अनंत ज्ञानों का भाग है या कुल है। अत: इससे अनिवार्य हो जाता है कि ख़ुदा को रूहों के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की ख़बर न हो तथा इस से अधिक उस का कोई ज्ञान न हो। और यदि भाग है तो सीमित हो गया। क्योंकि भाग सम्पूर्ण से हमेशा छोटा होता है। अत: इससे भी यही परिणाम निकला कि रूहें सीमित हैं और स्वयं यही बात सच थी। जिस व्यक्ति को ख़ुदा ने मारिफ़त (अध्यात्म ज्ञान) की रोशनी प्रदान की हो वह भली भांति जानता है कि ख़ुदा के अनंत ज्ञानों के दरिया पृथ्वी से मौजूद रूहों का ज्ञान इतना भी संबंध नहीं रखता कि जैसे सूई को समुद्र

में डुबो कर उस में कुछ नमी शेष रह जाती है।

फिर बावा साहिब यह लिखते हैं कि यह ऐतराज़ करना अनुचित है कि "अनंत और अनादि होना ख़ुदा की विशेषता है। यदि रूहें भी अनंत और अनादि हों तो ख़ुदा के बराबर हो जाएंगी, क्योंकि किसी आंशिक भागीदारी से समानता अनिवार्य नहीं होती। जैसे मनुष्य भी आंख से देखता है और जानवर भी, परन्तु दोनों समान नहीं हो सकते।" बावा साहिब का यह तर्क ग़लत और गिरा हुआ है, अन्यथा कौन बुद्धिमान इस बात को नहीं जानता कि जो विशेषताएं ख़ुदा के अस्तित्व में पाई जाती हैं वे सब उस अद्वितीय अस्तित्व की विशेषताएं हैं। उनमें कोई वस्तु स्रष्टा (ख़ुदा) की भागीदार-साझी नहीं हो सकती, क्योंकि यदि हो सकती है तो उसकी समस्त विशेषताओं में अन्य की भागीदारी वैध होगी, और जब विशेषताओं में भागीदार वैध हुए तो एक और ख़ुदा पैदा हो गया। भला इस बात का आप के पास क्या उत्तर है कि ख़ुदा की अनादि विशेषताओं में से जो अनादि और अनंत होने की विशेषता है वह तो उस के अन्य में पाई जाती है परन्तु उसकी दूसरी विशेषताएं उस से विशिष्ट हैं। आप तनिक विचार करके देखें कि ख़ुदा की सम्पूर्ण विशेषताएं एक समान हैं या परस्पर निकट हैं। अत: स्पष्ट है कि यदि उसकी विशिष्ट विशेषताओं में से एक विशेषता में अन्य से भागीदारी वैध होगी तो सब में वैध होगी और यदि नहीं तो सब में नहीं। और आप ने यह जो उदाहरण दिया कि जानवर मनुष्य के समान आंख से देखते हैं, परन्तु इस देखने से जानवर मनुष्य नहीं हो सकता और न उसके समान। आप का यह उदाहरण अनुचित है। यदि आप थोड़ा सा भी विचार करते तो ऐसा उदाहरण कभी न देते। हज़रत: यह कौन कहता है कि संभावनाओं को बाह्य सामने आने वाली चीज़ों में परस्पर भागीदारी तथा एक जिंस (प्रजाति) की नहीं हो सकतीं। विवादित मामला तो यह है

कि ख़ुदाई विशेषताओं में अल्लाह के किसी ग़ैर की भी भागीदारी है या उसकी विशेषताएं उस के अस्तित्व से विशिष्ट हैं। आप इस विवादित बात के मुद्दई (दावेदार) हैं और उदाहरण संभावनाओं का प्रस्तुत करते हैं जो बहस से बाहर है। आप विवादित मामले का कोई उदाहरण दें तब समझाने का अंतिम प्रयास पूर्ण हो अन्यथा संभावनाओं की भागीदारी, एक जिंस (प्रजाति) होने से यह समझाने का प्रयास पूर्ण नहीं होता। न स्रष्टा (ख़ुदा) के अस्तित्व की विशेषताओं का संभावनाओं के सामने आने वाली चीज़ों पर कल्पना करना बुद्धिमता का मार्ग है। इसके अतिरिक्त संभावनाओं में भी जो विशेषताएं हैं वे भी उन के अस्तित्वों से विशिष्ट हैं। जैसे कि मनुष्य की पूर्ण सीमा यह है कि 'हैवान नातिक़' (बोलने वाला प्राणी अर्थात् मनुष्य) है और नातिक़ होना मनुष्य की व्यक्तिगत विशेषताओं में से तथा उसका अन्य से अंतर और अलग होना है उसका यह अंतर कि अवश्य देखने वाला भी हो और आंख से भी देखता हो क्योंकि यदि मनुष्य अंधा भी हो जाए तब भी मनुष्य है और मनुष्य की व्यक्तिगत विशेषताओं में से वह बात है जो शरीर से रूह के अलग होने से उसके अस्तित्व में बनी रहती है। हां यह बात सच है कि संभावनाओं में इस कारण से कि वे सब तात्विक तरक़ीब में एक हैं। कुछ परिस्थितियां पूर्ण वास्तविकता से बाहर हैं. एक-दूसरे की भागीदार भी होती हैं जैसे मनुष्य और घोड़ा और वृक्ष कि जौहर, अबआदे सलासा=(तीन फासले) अर्थात् लम्बाई, चौड़ाई और गहराई तथा विकास-शक्ति में ये तीनों भागीदार हैं और संवेदनशील तथा इरादे से गतिशील होने में मनुष्य और घोड़ा भागीदारी रखते हैं परन्तु पूर्ण वास्तविकता प्रत्येक की अलग-अलग है। अत: संभावनाओं की यह अस्थायी विशेषता पूर्ण वास्तविकता पर अतिरिक्त है जिसमें उनकी कभी भागीदारी और कभी पृथकता हो जाती है तथा वास्तविकताओं में भिन्नता और पृथकता होने के

बावजूद कभी-कभी कुछ भागीदारियों में एक जिंस (प्रजाति) के अन्तर्गत सम्मिलित हो जाती हैं बल्कि कभी एक वास्तविकता के लिए एक जिन्स होती हैं और यह भी कुछ समझा कि ऐसा क्यों होता है। यह इसलिए होता है कि उनकी भौतिक तरकीब (निर्माण प्रक्रिया) उनकी मूल वास्तविकता अतिरिक्त है तथा सब की भौतिक तरकीब का एक ही मूल है। अत: आप पर स्पष्ट होगा कि संभावनाओं की यह भागीदारी व्यक्तिगत विशेषताओं में भागीदार नहीं बल्कि बाह्य अवारिज़ में भागीदारी है। मनुष्य की आन्तरिक आंख जिसे बसीरते क़ल्बी (एनलाइनमेण्ट) कहते हैं दूसरे प्राणियों में कदापि नहीं पाई जाती।

बावा साहिब अपने उत्तर के अन्त में यह बात कह कर चुप हो गए हैं कि आरोपी के सब तर्क भ्रम हैं खण्डन-योग्य नहीं। इस वाक्य से प्रवीण एवं विनोदप्रिय लोगों ने तुरन्त ज्ञात कर लिया होगा कि बावा साहिब को यह शब्द क्यों कहना पड़ा। बात यह हुई कि प्रथम तो हमारे आदरणीय मित्र जनाब बावा साहिब उत्तर देने की ओर दौड़े और यथा संभव हाथ-पैर मारे, कूदे, उछले परन्तु जब अन्त में कोई उपाय न रहा और जटिल समस्या का निवारण न हो पाना ज्ञात हुआ तो अन्तत: हांप कर बैठ गए और यह कह दिया कि क्या खण्डन करना है ये तो भ्रम हैं परन्तु हर बुद्धिमान जानता है कि जिन तर्कों की नींव विश्वसनीय मुक़दमों पर है वे भ्रम कैसे हो गए। अब हम इस लेख को समाप्त करते है और भविष्य में बिना आवश्यकता के नहीं लिखेंगे।

लेखक

मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद रईस क़ादियान

अख़बार 'आफ़ताब' 16 मई 1878 ई० में दर्ज मुंशी गुरदयाल साहिब शिक्षक मिडिल स्कूल चिन्योट द्वारा किए गए प्रश्न का आवश्यक उत्तर

मुंशी गुरदयाल साहिब ने रूहों के अनादि होने की अपनी विचारधारा प्रस्तुत करके हमसे बड़े आग्रह-पूर्वक उसका उत्तर मांगा है। यद्यपि हम पहले निबंध के उपसंहार में लिख चुके हैं कि भविष्य में इस बहस पर बिना आवश्यकता नहीं लिखेंगे, परन्तु चूंकि आदरणीय मुंशी साहिब ने अपने सन्देहों के निवारण के लिए बहुत विनती की है और हमारे नज़दीक भी कथित मुंशी साहिब के सन्देहों का दूर करना वास्तव में एक ज्ञान संबंधी उत्तम छानबीन इस उत्तर को अत्यावश्यक और जन-हित में होने के कारण अपवाद समझ कर संक्षिप्त तौर पर नीचे लिखते हैं-

प्रथम मुंशी साहिब का विचार जिसे वह रूहों के अनादि होने के सबूत में तर्क समझ कर प्रस्तुत करते हैं यह है कि ख़ुदा तआला अपनी सृष्टियों (मख़्लूक़ात) का पूर्ण कारण है और मा'मूल (कर्म) अपने पूर्ण कारण से पीछे नहीं रह सकता। अत: सिद्ध हुआ कि वर्तमान रूहें (आत्माएं) स्रष्टा के अस्तित्व के समान अनादिकाल से हैं नई पैदा होने वाली नहीं हैं।

हमारा उत्तर यह है कि आदरणीय मुंशी साहिब का यह तर्क हरगिज़ सही नहीं है और न उनको कुछ लाभ देता है बल्कि उनके दावे को सही सिद्ध करने के विपरीत ग़लत सिद्ध करता है। क्योंकि स्पष्ट है कि कृपालु ख़ुदा का अस्तित्व पवित्र, असीमित और अनन्त है और रूहों (आत्माओं) के जन्म पूर्ण कारण वही असीमित अस्तित्व है। अब यदि शिक्षक साहिब के कथनानुसार यह मान लिया जाए कि कर्म का अपने पूर्ण कारण से

पीछे रहना असंभव है तो इस से यह अनिवार्य आता है कि वर्तमान रूहें (जो उनके कथनानुसार अनादि काल से मौजूद हैं) असीमित और अनन्त हैं। क्योंकि जब पूर्ण कारण अनन्त है तो कर्म भी अनन्त होना चाहिए अन्यथा अनिवार्य होगा.......... कि पूर्ण प्रभावकारी का प्रभाव अपूर्ण हो। हालांकि वर्तमान रूहों का अनन्त होना हमारे चौदह तर्कों द्वारा ग़लत सिद्ध हो चुका है जिसे स्वामी दयानन्द साहिब भी विवश और निरुत्तर होकर स्वीकार कर चुके। फिर जब कि रूहों के अनन्त होने के बारे में यह तर्क झूठा निकला तो उनके अनादि होने में कब सच्चा हो सकता है।

इसके अतिरिक्त अल्लाह का कार्यों को देखना भी इसके विपरीत गवाही देता है क्योंकि प्रकृति के नियम के दैनिक अनुभव और देखने में हम पर सिद्ध कर दिया है कि ख़ुदा के कार्य समयों के आभारी और समयों से प्रतिबद्ध हैं तथा भिन्न-भिन्न समयों में प्रकट होते रहते हैं। कभी धूप है कभी बादल है, कभी रात है, कभी दिन है, कभी शोक है और कभी ख़ुशी, एक समय वह था कि हम नास्ति थे और अब यह समय है कि हम जीवित पृथ्वी पर मौजूद हैं और फिर वह समय भी आने वाला है कि हम नहीं होंगे और स्पष्ट है कि यह सब कुछ ख़ुदा के इरादे से हो रहा है और इन सब बातों तथा रोगों का पूर्ण कारण वही अनादि इरादा है। अत: यदि शिक्षक साहिब के कथनानुसार कल्पना की जाए कि स्रष्टा और सृष्टि की अनुकूलता अनिवार्य है तो इससे यह अनिवार्य आता है कि समस्त दुर्घटनाएं जो कभी-कभी प्रकट होती हैं हमेशा एक अवस्था पर बनी रहें और दुनिया में एक ही नियम रहे। परन्तु प्रत्येक बुद्धिमान जानता है कि संसार परिवर्तनशील है और दुर्घटनाओं के समस्त भाग क्षण भर में एकत्र नहीं हो सकते और किसी सृष्टि को एक हालत पर स्थिरता नहीं। तो इससे यही सिद्ध हुआ कि शिक्षक द्वारा प्रस्तुत तर्क

भी अविश्वसनीय और सर्वथा ग़लत हैं।

इसके अतिरिक्त जब दूसरे भाग की ओर ध्यान दिया जाता है कि क्या रूहों के अनादि होने के बारे में कोई सुदृढ़ तर्क है या नहीं तो ऐसे सुदृढ़ और निश्चित तर्क मिलते हैं कि मनुष्य को उन्हें मानने के अतिरिक्त कुछ बन नहीं पड़ता। इस बारे में हम पहले निबंध में बहुत कुछ लिख चुके हैं अब दोहराना आवश्यक नहीं, किन्तु नया तर्क जिस से रूहों के अनादि होने के खण्डन में ठोस फैसला हो गया बल्कि फैसला क्या क़लई ही खुल गई इस निबंध में भी लिखा जाता है और उस तर्क की भूमिका यह है कि आर्य समाज वाले अपने मान्य सिद्धान्त के अनुसार स्वयं इक़रार कर चुके हैं कि वर्तमान रूहें सवा चार अरब समय से अधिक नहीं जितनी हैं उस समय से आरंभ होती हैं और उसके अन्दर अन्दर समाप्त हो जाती हैं और फिर यह भी इक़रार है कि समस्त रूहों का यात्री निवास (अस्थायी ठिकाना) यही गोल पृथ्वी ज्ञात और सीमित है और उस स्कूल में सब रूहें शिक्षा पाती और ज्ञान सीखती हैं बल्कि जितनी रूहें आज तक मुक्ति का पद पा चुकी हैं वे सब इस छोटे से स्कूल की सफलता प्राप्त हैं।

अब स्पष्ट है कि इन इक़रारों से बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि वर्तमान रूहें अनन्त नहीं बल्कि समय और स्थान में सीमित होने के कारण किसी निर्धारित अनुमान में विभाजित की गई हैं। फिर जबकि यह हाल है तो अब दर्शक स्वयं विचार करें कि इस हालत में शिक्षक साहिब का यह कथन कि वर्तमान रूहें अवश्य अनादि हैं किस प्रकार सही हो सकता है। क्योंकि जिस हालत में रूहें अनन्त न हुई बल्कि किसी विशेष संख्या में सीमित ठहरीं तो आवश्यक तौर पर उनके आवागमन और मुक्ति पाने का कोई प्रारंभ मानना पड़ा अर्थात् वह युग कि जिस में सर्व

प्रथम किसी रूह ने कोई जन्म लिया था या मुक्ति का पद पाया था। अत: जब आवागमन के प्रारंभ और मुक्ति पाने का इक़रार दिया गया तो रूहें अनादि न रहीं क्योंकि अनादि वह वस्तु है जिसका कोई प्रारंभ न हो। इसलिए सिद्ध हो गया कि अनादि नहीं और यही मतलब था (अब जनाब क्या ख़बर है अब भी आप रूहों को अनादि कहते रहोगे) कुछ लोगों ने यह उत्तर दिया है कि संभव है कि पहले एक असीमित समय से समस्त रूहें निलंबन और बेकारी की हालत में पड़ी रही हों फिर पीछे से ईश्वर को यह विचार आया कि उन रूहों का फारिग़ रहना अच्छा नहीं। तो उस दिन से ईश्वर के दिल में यह विचार पैदा हुआ तो सब रूहों को इन्सान और जानवर, गधे-घोड़े बना कर जन्म-मरण के संकट में डाल दिया और युग में मुक्ति भी आरंभ हो गई। इसी हालत में आवागमन और मुक्ति पाने का प्रारंभ होना रूहों के अनादि होने में कुछ विघ्न नहीं डाल सकता।

सुब्हानअल्लाह क्या अच्छा उत्तर है। इस से मालूम हुआ कि अब आर्य समाज वाले बारीक मकर (छल) में बहुत उन्नति कर गए हैं तभी तो ऐसे-ऐसे उत्तम उत्तर देने लगे। भले मानस मैं आप से पूछता हूं कि आवागमन और मुक्ति पाने से पहले समस्त रूहें दुखों और कष्टों में ग्रस्त थीं या आराम में और समृद्धि में। यदि दुखों में ग्रस्त थीं तो किस कर्म के दण्ड से, और यदि आराम में थी तो किस शुभ कर्म (नेक काम) के बदले में? इसके अतिरिक्त यदि मुक्ति पाने से पहले समृद्ध और प्रसन्न थीं तो फिर उनको मुक्ति मांगना प्राप्त को प्राप्त करना था, जिससे मानना पड़ा कि मौजूद न थीं। यदि यह कहो कि यद्यपि पहले ही आराम में थी परन्तु उनको आवागमन के चक्कर में इसीलिए डाला गया कि ख़ुदा की पहचान प्राप्त करें। तो उत्तर स्पष्ट है कि जब रूहों को असीमित अवधि

में ख़ुदा के साथ रहकर और उसके साथ उठने-बैठने वाले होकर बल्कि स्थायी भागीदार कर ख़ुदा की पहचान प्राप्त न हुई तो फिर कीड़े-मकोड़े बन कर अध्यात्म ज्ञानों (मआरिफ़) का क्या भण्डार एकत्र कर सकती थीं बल्कि न किए गुनाह जन्म-मरण के भिन्न-भिन्न प्रकार के कष्टों में डालना आर्य समाज के सिद्धान्त के विरुद्ध है और इसीलिए तो श्रीमान आवागमन साहिब नास्ति के द्वीप की ओर सर पटकते हैं। इसके अतिरिक्त आर्य समाज के सिद्धान्त के अनुसार रूहों का निलंबन भी बिल्कुल अवैध है फिर असीमित निलंबन किस प्रकार वैध हो। अत: ऐसा विचार कि रूहें अनादि हैं सर्वथा ग़लत।

फिर शिक्षक साहिब लिखते हैं कि रूहों का बार-बार पैदा होना असंभव है बल्कि जितनी रूहें पैदा हो सकती हैं वे अनादिकाल से मौजूद हैं और आगे (भविष्य में) सृष्टि करने की शक्ति समाप्त है। यह ऐसा वर्णन है कि जिसे हम दूसरे शब्दों में...........

★ ★ ★